लघु-उपन्यास

उपन्यास

प्रगति प्रकाशन मास्को

अनुवादक—मदन लाल 'मधु'

चित्रकार—व० इल्यूश्चेंको

МУХТАР АУЭЗОВ

СТЕПНОЙ ТАБУНЩИК

Повесть

На языке хинди

बड़े ने छोटे भाई को हाथों में ऐसे उठा लिया मानो व
बच्चा हो और झटपट बिस्तर ठीक करती हुई अपनी पत्नी
से कहा:

"इस में तो न हाड़ है न मांस। बिल्कुल कांटे-सा है
हल्का-फुल्का, रूई के गोले जैसा. ओह, क्या हाल क
डाला है उन्होंने इस बांके नौजवान का!"

बिस्तर था — झाड़े के झोपड़े में मिट्टी की कच्ची दीवा
के साथ बिछा हुआ तीन-चार तहवाला रूई का गद्दा
बीमार को बहुत सावधानी से दायीं करवट लिटा दिया गया

बड़ा भाई जब तक उसे हाथों में उठाये रहा, उन्हीं कुछ क्षणों में
रोगी बदहाल हो गया, उसे सांस लेने में तकलीफ होने लगी
और उसने अपने बेजान होंठों को बड़ी मुश्किल से हिलाया-
डुलाया। भाई और भाभी ने उसकी बात सुनने के लिए
उसके मुंह के साथ अपने कान लगा दिये। फिर भी शब्दों
के बजाय उसके होंठों की हरकत से ही उन्होंने उसकी बात
का अनुमान लगाया। उसने कहा:

"मरियल घोड़ा — जैसे हवा में तीरा"...

"मरियल पति – जैसे चलती-फिरती छाया," दुख से गहरी सांस लेते हुए नारी ने कहावत को पूरा किया।

बड़े भाई का नाम था वास्तीगुल और छोटे का तेक्तीगुल। नारी थी – हातशा।

काली-काली मूछें, चौड़ी छाती और मजबूत कंधे – ऐसा था वास्तीगुल। वह सिर झुकाकर बीमार के पास बैठ गया। अभी पिछली पतझर में ही तेक्तीगुल का सूरमाओं जैसा डील-डौल देख लोग दांतों तले उंगली दबाकर रह जाते थे। वह अपने भाई से सिर भर ऊंचा, हट्टा-कट्टा और तगड़ा था। पर अब कम्बख्त बीमारी ने उसकी जान ही निकाल ली थी। नौजवान की ताकत ऐसे ही जाती रही थी, जैसे बड़े घाव में से खून।

पहले तो नंगी चट्टान भी उसे नर्म लगती थी और अब गद्देदार बिस्तर भी सख्त महसूस होता था। मीन-मेख निकालता रहता और बार-बार बिस्तर ठीक करने को कहता। उसे हाथों में उठा लेना तो मानो बच्चों का खेल था। मगर पहले तो कोई उसे जमीन से हिला तक नहीं पाता था।

बरबस किशोरावस्था के उस भयानक साल की याद आती है, जब आज की भांति ही वास्तीगुल को अपने छोटे भाई को लादकर ले जाना पड़ा था। तब बड़े भाई की उम्र थी सोलह और छोटे की दस साल। दावानल की भांति टाइफाइड ने सारी बस्ती, पड़ोस के सभी गांवों को आ दबाया था। मां-बाप एक ही दिन चारपाई पर पड़े और फिर एक ही दिन दुनिया से चल बसे – मां सुबह को

और बाप रात को। दोनों भाई गाव से भाग निकले और जैसा कि मरते समय पिता ने नसीहत की थी, जिधर पाव ले गये, उधर ही चलते गये। जब छोटे भाई की टागो ने जवाब दे दिया, तो बड़ा भाई बची-बचायी ताकत बटोरकर उसे अपनी पीठ पर लाद ले चला ताकि वे गाव से अधिकाधिक दूर हो जायें। तब यारलीगुल ने भाई की जान बचाई थी, वह उनका पीछा करते हुए छूत के रोग से उसे दूर भगा ले गया था। मगर अब लगता है कि वह उसकी रक्षा करने में असमर्थ है..

सेवनीगुल को बेचैनी सताती रहती थी, जवानी के दिनो की नहीं, मौत की बेचैनी।

"जड़ से काटे हुए पौधे मे हरे पत्ते नहीं आते," वह निर्जीव, धुधली-धुधली और डरावनी-डरावनी आंखों से कभी भाई और कभी भाभी की ओर देखते हुए यही रटता रहा। "यह सब कुछ हमारी कम्बख्त गरीबी का, हमारे अनाथपन का नतीजा है। रोगों ने नहीं, गरीबी ने मुझे मार डाला है, भाई। कैसे कटेगी तुम्हारी, मेरे बिना?"

उसके होंठो मे बल पड़ गये और मानो उसकी आत्मा मे उमड़ता-घुमड़ता सहमेवाला तूफान बाहर आ गया.

"ओह, नाम भी बदला मे मरना... अपनी मौत मर गयी, अपमान का..." वह बुदबुदाया और उसने [illegible] [illegible] बेचनी की गिनती भरी। दीवार की ओर मुह फेरकर वह बूढे-बुजुर्ग की तरह [illegible] लगा।

याद [illegible] पाने की मन मे न रह गयी। उसकी आंखें डबडबा आईं और वह कह उठी:

"कमीने न हों तो! हाथ-पैर टूट जायें कम्बख्तों के! मारते रहे, मारते रहे... बुरा हाल कर डाला इसका मार मार कर... फिर कुछ तो दिया होता बदले में, कोई मरियल-सा बकरा ही। कोई भीख ही दे देते... बीमार को खिलाने-पिलाने के लिए।"

वास्तीगुल नपी-तुली बात करनेवाला आदमी था।

"भी... ख?" उसने घृणा और व्यंग्य से हंसकर कहा। उसकी घनी और काली मूंछों के सिरे नीचे हो गये।

हातशा पति की बात समझ गई। उनके दुश्मनों के दिल में न तो दया थी और न परोपकार की भावना। हाथ से कुछ देना तो दूर—वे तो उसे एक नज़र देखने को भी तैयार नही थे। तेक्तीगुल के साथ ऐसा जुल्म करनेवाले जानते थे कि इस हड्डियों के ढेर, इस रोगी को खाने-पीने को कुछ देने का मतलब होगा उसके सम्मुख अपने अपराध को स्वीकारना... अगर तेक्तीगुल भला-चंगा नहीं होगा तो स्तेपी के प्राचीन कानून के मुताबिक उन्हें हत्या का मुआवज़ा चुकाना होगा। यही था वह, जिससे उन्हें डर लगता था।

वास्तीगुल को उस दिन से लेकर जब उसके देखते-देखते ही मां-बाप की आंखें बन्द हुई थीं, अब तक के अपने सारे जीवन में एक भी ऐसा दिन याद नहीं था, जब अमीर लोगों ने न्याय से काम लिया हो।

उस भयानक वर्ष में टाइफाइड के चंगुल से तो ये दोनों बच निकले, मगर दुर्भाग्य के हाथों से नहीं बच पाये। काफी भटकने-भटकाने के बाद उन्हें दूर के रिश्ते के मामा के घर

में सिर छिपाने की जगह तो मिल गई, मगर किस्मत ने साथ नहीं दिया। दोनों छोकरे धनी कोजीबाक वंश के साथ में कड़ी मेहनत का जीवन बिताने लगे। कोजीबाक वंश के लोग युर्गेन्स्क क्षेत्र में भटकते रहते थे। पिछली पतझर में इन दोनों को कोजीबाक परिवार के सबसे छोटे बाई सात्मेन की सेवा करते हुए बीस वर्ष हो गये थे। बड़ा ही कठोर, बहुत ही संगदिल था यह मालिक!

नौकरी के सालों में बाल्तीगुल ने खासी इज्जत पा ली थी—वह घोड़ों के झुण्डों का बड़ा चरवाहा बन गया था, चरवाहों में ऊंचा दर्जा पा लिया था। हां, यह सही है कि धनी नहीं हो पाया था। उसकी जगह उसका मालिक—सात्मेन—जरूर मालामाल होता जाता था। कुशल बाल्तीगुल ने स्तेपी में बाई के ढेरों घोड़े, बढ़िया और मजबूत नसल के सैकड़ों पशु पाले।

छोटे भाई तेकसीगुल के साथ, जो घोड़ियों को दुहता था, बाई बहुत बुरी तरह से पेश आता। साल पर साल गुजरते गये, जवानी बिना खुशियों के आई और वैसे ही चली गई, मगर तेकसीगुल की जिन्दगी जैसी थी वैसी ही रही। दिन को वह घोड़ियां दुहता और रात को भेड़ों की रखवाली करता।

बाल्तीगुल की किस्मत ने उसका साथ दिया—बाई ने उसकी शादी भी कर दी। पड़ोसी गांव के चरवाहे की बेटी हालमा उसकी बीवी बन गई, वह भी अपने पति के समान बाई सात्मेन, उसकी बीवी और मां की सेवा करने

लगी। वाक्नीगुल ने कोई दस वर्षों में जो कुछ कमाया था, वह सभी इस शादी की नजर हो गया। मगर वह करता भी तो क्या, बाई की ऐसी ही इच्छा थी। मगर तेक्नीगुल तीस वर्ष का हो गया था और अभी तक कुंआरा ही था।

बड़ी धाक थी इन दोनों भाइयों की अपने इर्दगिर्द के इलाके में। दिलेरी और जवांमर्दी के लिए बड़े मशहूर थे वे। बाई को इनसे एक और भी खास फायदा था।

कोजीबाक वंश धनी था और इसलिए बहुत लालची भी, ताकत के नशे का दीवाना और ऐसा कि जिसकी भूख कभी मिटे ही नहीं। कोजीबाक वंश के लोग एक जमाने से "बारिम्ता" —यानी अपने जैसे लुटेरों और प्रतिद्वन्द्वियों पर धावा बोलने और उनके जानवर भगाने के लिए विख्यात थे। इस मामले में वाक्नीगुल और तेक्नीगुल बेमिसाल थे।

इन दोनों को काले-काले मोटे मोटे चमड़े और बढ़िया घोड़ों पर चढ़ाकर गुप्त धावे बोलने के लिए भेज दिया जाता। दोनों भाई बाई का हर हुक्म बजाने को तैयार रहते और जहां वह भेज देता, वहीं चल देते।

इनके मालिक माल्केन का बड़ा भाई साट अपने हल्के का हल्केदार बनने का बहुत ही इच्छुक था और इसके लिए वह लोगों में फूट के बीज बोता रहता था। वह अपने हल्के में दल बनाता, उनमें दुश्मनी की आग भड़काता और इस तरह अपना उल्लू सीधा करता। सोटों की सोटों से जिगीतों यानी जवानों की टुकड़ियां टूटतीं, बाई साट हल्केदार

के ओहदे का मजा उड़ाता और बाई सालमेन के पशुओं के झुण्ड और बढ़ जाते।

दूसरे वर्गों के नौजवान बाम्नीगुल और तेवतीगुल से डरते, उनकी ताकत से ईर्ष्या करते :

"वे तो आदमी नहीं—लट्ठ हैं, बड़े काले लट्ठ..."

ऐसा भी होता कि इनकी खिल्ली उड़ाई जाती :

"वे तो नौकर नहीं, दास हैं . दास-वधु हैं।"

ख्याति नहीं, कुख्याती, नेकनामी नहीं, बदनामी कमाई थी इन्होंने। परायों की तो खैर, बात ही अलग रही, अपने ही गांव की बड़ी-बूढ़ियां और बच्चे भी खुसुर-फुसुर करते हुए कहते :

"चले लड़ने को हमारे सूरमा, आदत के अनुसार... लौटेंगे घर अपने रात को कर लूट-मार.. "

मगर उन्हें तो बस एक ही बात की चिन्ता थी कि बाई खुश रहे! बाई की छाया में बाई की इच्छा ही भगवान थी।

साल-दर-साल, जाड़े और गर्मी में बोडोवाष वंश के लोग अधिकाधिक मोटे होते जाते और उनका मालय बढ़ता जाता। यों ही तो उनकी सेवा नहीं करते थे बाम्नीगुल और तेवतीगुल! घरवाले-वधुओं के मोटे थे भारी-भरकम, बड़े लम्बे-लम्बे, पर दिल से बहुत नर्म-नर्म। दांत बड़े तीर से थे, मगर तब भी वे न तो कभी गिला-शिकायत करते और न बात से इनकार।

बाई सालमेन उन्हें कुछ भी नहीं देता था। बाई और

भाइयों के बीच कभी वह करारनामा भी नहीं हुआ था, जो स्तेपी में प्रचलित था। इस करारनामे के मुताबिक एक खास अर्से में चरवाहों को कुछ निश्चित पशु और कपड़े आदि देने की व्यवस्था थी. . सारसेन के यहां इस तरह के चोंचलों की कोई गुंजाइश नहीं थी। क्या बाई अपने दास का बाप और शुभचिंतक नहीं है? तिस पर वे तो रिश्तेदार भी हैं, बेशक मां के वंश की ओर से ही। रिश्तेदारों को मजदूरी नहीं, उपहार दिया जाता है।

इसी लिए तीस वर्ष का हो जाने पर भी तेक्तीगुल के पास कुछ भी ऐसा नहीं हो पाया था, जिसे वह अपना कह सकता। कार्तोगुल और हातशा की हालत उससे कुछ बेहतर थी .

छोटा-सा पुराना खेमा, तीन-चार घोड़े, दर्जन भेड़ें— बस इतनी ही थी इनकी कुल जमा-पूंजी। इन तीन शक्तिशाली और चतुर व्यक्तियों ने अनेक वर्षों तक जोश और मेहनत से खून-पसीना एक कर और भारी जोखिम उठाकर बस यही कुछ कमाया था।

फिर भी खुदा का शुक्र होता अगर अमीर लोग इन्साफ करना जानते, अगर उनके सीने में कमीना दिल न होता।

पिछली पतझर की एक बरसाती रात की बात है। तेज हवा चल रही थी, पानी बरस रहा था कि एक भारी मुसीबत की बिजली गिरी। गांव भर में चीख-पुकार, रोना-धोना और गाली-गलौज ही सुनाई दे रहा था। इस समय कार्तोगुल स्तेपी से घोड़ों के झुंडों को वापिस ला

रहा था। बाई साल्मेन चीखता-चिंघाड़ता, ऊंट की तरह गुस्से से थूकता और जो भी सामने आ जाता, उसी पर कोड़े बरसाता हुआ गांव में इधर-उधर भागा फिर रहा था। हालशा बुझे हुए चूल्हे के पास पड़ी हुई आंसू बहा रही थी और तेवनीगुल का नाम ले लेकर ऐसे विलाप कर रही थी मानो वह इस दुनिया से चल बसा हो।

"कहां है वह?"

"ख़ुदा जाने..."

"जिन्दा है या नहीं?"

"ख़ुदा जाने..."

जाहिर है कि तेवनीगुल था तो स्तेपी में ही। हुआ यह कि बवंडर के कारण भेड़ों का रेवड़ इधर-उधर बिखर गया और वे गांव से दूर भाग गई। तेवनीगुल उनके पीछे नहीं गया और जब बाई कोड़ा लिये हुए भागा आया, तो जिन्दगी में पहली बार वह अपने पर काबू न रख पाया और उसने बाई के चर्बी से फूले हुए मुंह पर ही यह कह दिया:

"देख रहे हैं न कैसी भयानक रात है... और मेरे तन पर न कपड़े हैं, न पैर में जूती। बस, यही एक चोगा है और वह भी वर्षों से सड़-गल गया है, छेद ही छेद हुए पड़े हैं इसमें... तन ढंकने के लिए कुछ पुराने-धुराने कपड़े ही दे दीजिये।"

साल्मेन ने तो ऐसी बात सुनने की कभी आशा ही न की थी। उसे तो मानो भारी धक्का लगा।

"भेड़ें मर जायेंगी .. बहुत बड़ा रेवड़ है। और तुम हो कि सौदेबाजी कर रहे हो?"

"मैं आपकी मिन्नत करता हूं...दया कीजिये..."

"कुत्ते का पिल्ला! अपनी चमड़ी की फिक्र पड़ी है इसे!"

तेस्तीगुल ने ऐसे ही बुझे-बुझे अन्दाज से मजाक कर दिया

"बस यही एक तो है मेरे पास, सो भी आख़िरी..."

"तो कोई बात नहीं, मैं एक की तीन बना देता हूं।"

बाई का इशारा पाते ही उसके पांच जवान तेस्तीगुल पर टूट पड़े, उन्होंने उसे जमीन पर गिरा दिया और खुद बाई पागल की भांति बूटों से उसकी छाती पर ठोकरें मारने लगा। उसके बाद उसे गली से खदेड़ दिया। तेस्तीगुल ने कोई हील-हुज्जत न की। वह शर्म से पानी-पानी होता हुआ चल दिया और जाते-जाते अत्यधिक हताशा से उसने केवल इतना कहा:

"पाप तुम्हारे सिर चढ़ेगा..."

बाई ने लाल-पीला होते हुए पीछे से ढेर-सारी गालियां बक दीं।

तेस्तीगुल को एक नजर देखते हुए भी लोगों का कलेजा कांप जाता था। बाई के बूटों की ठोकरों से उसका चोगा तार-तार हो गया और चीथड़े ठीक वैसे ही लटकने लगे थे जैसे मौसम बदलते समय ऊंट के बाल। लेकिन लोग चुप्पी साधे रहे और बाई कोड़े से दास को घसीटता हुआ चीखता रहा...

तेवतीगुल एक घूसा मारकर माल्मेन को दूसरी दुनिया में पहुंचा सकता था, मगर यह बात उसके दिमाग़ में ही नहीं आई। यह तो उसे तभी सूझी, जब वह ख़ुद मौत के किनारे जा पहुंचा था।

बाख़्तीगुल ने हताशा से कहा कि वह घोड़ों के झुण्डों पर नज़र रखे और ख़ुद घोड़ा दौड़ाता और भाई को पुकारता हुआ स्तेपी की ओर चला गया। उसने इर्दगिर्द के टीलों और नालों का चक्कर लगाया, भेड़ों को घेर लाया, मगर सुबह होने तक तेवतीगुल को नहीं खोज पाया। आख़िर जब वह मिला और उसने उसे घोड़े पर चढ़ाया और अपने तन की ओट कर उसे आंधी-पानी से बचाया, तो तेवतीगुल न ज़िन्दा था, न मुर्दा।

हताशा घोड़ों को वश में न रख पाई। तूफ़ान ने घोड़ों को ऐसे बिखरा दिया मानो वे भेड़ें हों। और जैसे ही भाई गांव में दिखाई दिये, वैसे ही उन दोनों को मालिक की बड़ी सज़ा का मज़ा चखना पड़ा। छोटा भाई बेहोश था, सन्निपात की हालत में बड़बड़ा रहा था और ऐसी दशा में ही उसकी ख़ूब पिटाई की गई। बड़ा भाई उसकी रक्षा नहीं कर पाया। जो कुछ भी हाथ में आ गया, उसी से भाइयों की पिटाई की गई, निर्दयता और निष्ठुरता से, मानो वे चुड़ैल हों।

इस रात के बाद भाई माल्मेन के डर से घबरा गये। वे कोठेवालों के हाथ से अपनी छोटी-सी जमा-पूंजी लेकर पड़ोस के ... में भाग गये और उन्होंने कां-बार से

जाड़े वाले उस पुराने झोंपड़े में ही जाकर पनाह ली, जिसे बीस वर्ष पहले छोड़ कर भागे थे।

मगर उनके साथ ही साथ मां-बाप के घर में लुकी-छिपी मौत भी आई, वैसे ही जैसे कभी टाइफाइड आया था। मौत आकर तेक्तीगुल के सिरहाने खड़ी हो गई।

जवान ने ऐसी चारपाई पकड़ी कि फिर उठा ही नहीं। जाड़े भर उसे ऐसे ज़ोर की ख़ूनी खांसी आती रही कि उसकी आतें बाहर निकलती प्रतीत होतीं। तेक्तीगुल गाढ़ा-गाढ़ा ख़ून थूकता रहता और ख़ून के जमे हुए टुकड़ों के साथ-साथ ही उसकी ताक़त भी निकलती जाती।

पहले वह कभी किस्मत को भला-बुरा नहीं कहता था, कोसता नहीं था, मगर अब दांत भींच कर सारा दिन बुरी तरह पीटे गये पिल्ले की भांति कूं-कूं करता रहता। वह किस्मत को इसलिए नहीं कोसता था कि उसने अपनी जिन्दगी में कोई सुख-सौभाग्य नहीं देखा था, न बीवी मिली थी, न बच्चे हुए थे, इसलिए भी नहीं कि वह मरना नहीं चाहता था, बल्कि इसलिए कि अपने अपमान का बदला नहीं ले पाया था। तेक्तीगुल बचपन से ही बहुत उदारमना, बहुत ही सीधा-सादा था, झटपट लोगों की बात मान लेता था। और अब तो मानो कुत्ते का भूत उसकी आत्मा में आकर बस गया था।

जाड़े में जब बसन्त आयी, तो हाकिम की बात मानकर बाक़ीगुल सार्जेंट के भाई साहब के पास गया। वह

निष्कपट मन और दबी-दबी जबान से उसके पास शिकायत करने गया।

लाट ने बहुत धैर्य से उसकी बातें सुनीं और ऐसे विस्तारपूर्वक उसे उत्तर दिये मानो अदालती कार्रवाई हो रही हो:

"तुमने कहा कि भूखों मरते हो? यह अच्छी बात है कि तुमने मुझसे कुछ छिपाया नहीं। पर गाल्मेन के यहां तुम लोग भूखों नहीं मरते थे? तुमने कहा कि वह मौत के मुंह की ओर बढ़ता जा रहा है? अच्छी बात है कि तुम किसी तरह की धूर्तता नहीं कर रहे हो। मगर जिसकी हत्या कर दी जाती है, वह फौरन मर जाता है और जिसकी पिटाई की जाती है, वह कभी नहीं मरता! लगे हाथों तुम्हारी भी थोड़ी-बहुत मरम्मत हो गई थी, मगर तुम जिन्दा हो... तुमने कहा कि वह बीमार पड़ा है? बस, यही तो है हकीकत और सच्चाई। मगर तुम तो जानते हो कि यह बीमारी क्या बला होती है! हममें से कौन इस बीमारी के पंजे में नहीं आता? कौन इससे नहीं डरता? मेरी और गाल्मेन की पत्नी भी खूब सुख-चैन का जीवन बिताती थी, दूध-घी से नहाती थी, मगर मरी तपेदिक से। इसके लिए तुम किसे अपराधी ठहराओगे? गाल्मेन को या मुझे? या फिर अपनी बीवी हाजरा को, जो अल्ला को प्यारी हो गयी हमारी मां की खिदमत और देखभाल करती थी? अल्ला से तो कुछ छिपा नहीं है, तुमने मुझे यह कुछ कहने के लिए मजबूर किया है, सो

मुझे नहीं कहना चाहिए था। मगर तुम्हें ऐसी बातें कहने की जुरंत ही कैसे हुई, किसने तुम्हें ऐसी पट्टी पढ़ाई है कि जो कुछ खुदा ने जाता है तुम इनसान से उसे लौटाने के लिए कहते हो?"

माट ने वास्तीगुल को कुछ भी कहने-सुनने का मौका न दिया और अपने घर से चलता कर दिया। वास्तीगुल मन ही मन कड़वे घूट पीता और हातशा तथा अपने पर हंसता हुआ वहां से चला गया।

वसन्त के शुरू में ही तेस्तीगुल इस दुनिया से चल बसा। उसकी कम होती हुई ताकत के साथ-साथ उसकी जिन्दगी का चिराग भी मन्द होता गया। आखिर उसकी आंखों का धुंधला-सा प्रकाश गायब हो गया।

वास्तीगुल बहुत दिनों तक शान्त नहीं हो पाया, बहुत दिनों तक भाई की याद में रोता-धोता रहा। उसने चालीस दिन तक मातम मनाया और चालीस दिन होने पर सारे गांव के अपने छोटे-से और गरीब रिश्तेदारों को जमाकर और अपनी आखिरी पूंजी खर्च कर रस्म-रिवाज के मुताबिक भाई का शोक मनाया।

इस अवसर पर एकत्रित लोगों ने कहा कि दिवंगत बबर था। उसकी दानाओं की चर्चा की गई। यह भी कहा गया कि सारा वन अनाथ हो गया, कि उसमें गुस्सा नहीं रहा।

"और मैं भी गुम-सुम हो गया..." फिर दुहराते हुए वास्तीगुल सोच रहा था। उसका दिल भेड़ की भांति ही सूना-सूना और वीरान था।

२

पतझार आई तो वाम्लीगुन ने एक ख़तरनाक काम करने की ठानी। उसने अंधेरी-बरसाती रात चुनी, मशक में दही मिला दूध भरा और उसे घोड़े की काठी के साथ लटकाकर पहाड़ों की ओर बढ़ चला, उसके साथ ही थी उसकी पुरानी संगिनी और मददगार – भूख।

घोड़े पर जाता हुआ वाम्लीगुन सोच रहा था.

"चिर-प्रतीक्षित पतझार आ गई.. बारिश शोर मचा रही है, बारिश नज़र के सामने पर्दा डाल रही है, बारिश पद-चिह्नों को मिटा रही है .. मगर किस्मत ने साथ दिया तो सुबह होने तक उसे तीन दर्रों के पार ले जाऊंगा। क्या मैं बेकार ही ख़ाक छानता फिर रहा हूं, उसका पीछा कर रहा हूं, उसकी घात में हूं?"

रात के अन्धकारपूर्ण आकाश की छाया में पहाड़ों ने बहुत ही विराट रूप धारण कर लिया था। वाम्लीगुन बड़ी मुश्किल से ही पगडंडी को देख पा रहा था, मगर चट्टानी पर्वतमाला और अतलों से ऊपरी भाग साफ़ दिखाई दे रही थी। चरवाहे की नज़र कुत्ते की नज़र की तरह तेज़ थी। और वे जगहें थीं उसकी जानी-पहचानी, ऐसी, जहां वह बार-बार आता-जाता था, उसकी बहुत ही प्यारी जगहें थीं।

दूरी से देखने पर दिन के समय पर्वत हिमों के पत्थर के ढेरों के समान लगते थे, एकदम नीरस-सुनसान और सुन-

सानों के लिए अगम्य। निकट से और रात को वे दूसरा ही रूप धारण कर लेते थे—दहशत पैदा करनेवाले जीवधारी का। ढालों पर खड़े ऊंचे घने फ़र वृक्ष एक अतिकाय, उनींदे और चैन से सांस लेते हुए राक्षस की चमड़ी जैसे प्रतीत होते थे। घाटियां जानवरों के तने हुए नुकीले कानों जैसी लगतीं और खड्ड जानवरों के खुले हुए जबड़ों जैसे, ठंडी-ठंडी और मौत की सी सांसें छोड़ते हुए और उनमें से उभरे हुए होते बड़े-बड़े चट्टानी दांत।

मगर बाल्लीगुल को यहां डर नहीं लगता था। पर्वतों से तो उसका जन्म का नाता था। वे खामोशी और चैन से उसका स्वागत करते थे, उसे अपनी ओर बुलाते थे और मानो कहते थे—बढ़ते जाओ, जल्दी करो, हम तुम्हें छिपा लेंगे।

यह सच है कि पतझर की रात में, विशेषतः बरसात के समय, इस पगडंडी पर बहुत भरोसा नहीं किया जा सकता था। इसलिए उसने हिचके बिना अपनी जान को घोड़े के हवाले कर दिया। उसका घोड़ा मजबूत, अनुभवी और ढालों पर चढ़ने-उतरने का आदी था। उसके कदम सधे हुए थे और वह पहाड़ी बकरे की भांति चतुर था। कहीं-कहीं पर तो पगडंडी धागे की तरह पतली हो जाती थी, उस पर दो खुरों को एकसाथ टिकाना भी कठिन हो जाता था, मगर घोड़ा इत्मीनान से नपे-तुले कदम रखता और फुर्ती से बढ़ता चला जा रहा था। वह न तो खाई ओर को झुकी हुई चट्टानों के साथ अपनी बगल सटने देता और न

मीठी गन्ध आ रही थी। मगर वाख़्तीगुल को ख़ाली पेट नींद नहीं आई। भेड़िये के पेट के समान वाख़्तीगुल के पेट ने भी दगा दिया। मशक ख़ाली हो गयी। ऐसी ख़ुराक से भला मर्द का क्या बनता है? पेय... वह तो गले के लिए होता है, पेट के लिए नहीं। प्यास जैसे कम होती है भूख वैसे ही और अधिक परेशान करने लगती है।

वाल्तीगुल ने अन्धेरा होने तक बड़ी मुश्किल से इन्तजार किया। उसके मन का ऊहापोह ख़त्म हो गया। वह तो केवल एक ही आवाज सुन रहा था—अपनी गुप्त सलाहकार, अपनी स्थायी संगिनी—भूख—की आवाज।

"सार्मेन के घरवाले या उन्ही के सगे-सम्बन्धी... ख़ुद सार ही को होने दो... कोई भी क्यों न हो!"

घोड़ों के झुण्ड अभी तो पहाड़ी चरागाहों में होंगे। अभी उनका स्तेपियों में नीचे आने का समय नहीं हुआ। आज रात को वहां, आकाश को छूते हुए चरागाहों में ही उनसे मुलाकात होगी... ख़ुदा जानता है कि अपराधी कौन है...

फिर भी वाल्तीगुल के दिल की गहराई में सन्देह रेंग रहा था।

"पहले तो सार्मेन अपनी सफ़ाई दे न!" उसने सोचा। मगर जो कुछ मन में ठानी थी, उसे करने से पहले उसने अपनी सफ़ाई देनी चाही।

"मेरे घर में तो सिर्फ़ मुट्ठी भर सत्तू है..." उसने घोड़े के कान में फुसफुसाकर कहा—"पूरे परिवार के लिए

नहीं, वे बकरों जैसे बुद्धू नहीं थे, कि योंही दूसरों से सिर टकराते फिरा करें। उन्हें सुराग लगाना, घात में बैठना, चकमा और धोखा देना, यह सभी कुछ आता था। वे सोये हुए के ऊपर से ऐसे घोड़ा कुदा ले जाते थे कि उसकी आंख न खुले और जागते हुए की आंखों में धूल झोंककर उसके सामने से निकल जाते थे। वे बहुत चुस्त, चालाक और समझदार थे। इनमें न केवल काफ़ी ताकत ही थी, बल्कि अक्ल का मेल हो जाने पर तो सोने में सुहागा हो गया था। इसके अलावा ये अपनी धुन के भी बड़े पक्के थे। अगर किस्मत साथ न देती, तीर निशाने पर न बैठता, तो काम अधूरा छोड़कर कभी न लौटते, खूब डटकर लड़ते, अकेले-अकेले दो-दो तीन-तीन से भिड़ जाते।

मान कि वाल्चीगुन में अब वह पहले का सा जोश होता, उत्साह की भी वह चुस्ती-फुर्ती होती। नहीं, इसका तो अब नाम-निशान भी बाकी नहीं रह गया था। उसे अपने दिल में कहीं कोई तार टूटता-सा, कहीं कुछ छिन्न-भिन्न होता-सा प्रतीत हुआ।

पर अब सोच-विचार करने का वक्त नहीं था। वाल्चीगुन ने खरगोश की विशेष अनुभूतिशीलता से ही गर्म और गीली घास पर घोड़ों के बड़े झुण्ड की मौजूदगी को अनुभव कर लिया। घोड़े अभी दूरी में परे चर रहे थे, मगर वाल्चीगुन को बयार के शोर और हवा की सरसराहट के बीच में ही उनकी आहट मिल गई थी।

अगर यहां अनुभवी रखवाले हैं, तो वे झुण्ड के आसपास ही चक्कर लगाते होंगे ताकि उन्हें पदचाप अच्छी तरह से सुनाई दे और वे अजनबी को जल्दी से पकड़ लें। ऐसों को तो अंधेरी रात में भी चकमा देना बहुत कठिन होता है। वाल्तीगुल ने [illegible] की कि पत्थरों पर उसके घोड़े के नाल न बज उठें, कि बहुत समय तक एकाकी रहने के कारण घोड़ों के झुण्ड को देखते ही वह हिनहिना न उठे।

ग़लती करना घातक हो सकता था। चोरी-चकारी के काम में चुस्त और दृढ़-संकल्पी ही सफल होते हैं। वाल्तीगुल घोड़े की लगाम थामे हुए था, उसे सिर नहीं झुकाने दे रहा था। वह खुद भी चौकस हो गया, अब कुछ भी तो हो सकता था। उसकी छोटी-छोटी आंखें पक्षी की आंखों की तरह पैनी हो गई थीं, गोल-गोल हो गई थीं मानो अन्धेरे में सचमुच ही सब कुछ देख सकती हों।

झुण्ड चरागाह वाली ढलान पर धीरे-धीरे वाल्तीगुल की ओर ऊपर आ रहा था। घोड़ों के झुण्ड और वाल्तीगुल के बीच बहुत ही थोड़ा फ़ासला था। वाल्तीगुल किसी एकाकी चट्टान की ओट में निश्चल हो गया। घोड़े अपने खुरों और होंठ फड़फड़ाते हुए सिर झुका कर रसीली घास चर रहे थे। खुरों की खटखट और उसांस से भरपूर हिनहिनाहट सुनाई दे रही थी। अपने-अपने झुण्डों के सिरताजों, चौकन्ने और लड़ाकू स्टालियनों अर्थात् बड़े घोड़ों की आवाज़ तो कभी-कभार ही सुनाई देती थी। पक्षी [illegible]
को घोड़ों के झुण्ड का [illegible] हुआ और थोड़ा-सा

वाल्लीगुल की आंखों के सामने साफ झलक उठा। वह यह सोचकर कांप उठा—कहीं सवेरा तो नहीं हो गया। नहीं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं था। झुण्ड बहुत बढ़िया था, बहुत ही बढ़िया।

वाल्लीगुल ने टोपी उतारकर ज़ीन के सिरे पर टांग दी। अपनी लम्बी मूछ को चबाते हुए उसने आहट ली। उसे सब कुछ ठीक-ठाक लगा। चरवाहे या तो शैतानों की तरह चालाक हैं, या फिर नींद का मज़ा ले रहे हैं। वहां न तो कोई दिखाई दे रहा था, न किसी की आवाज़ ही सुनाई पड़ रही थी। हां, मगर घोड़े सटे हुए चर रहे थे, यह बात उसे चौकन्ना होने के लिए मजबूर करती थी। संयोग से ऐसा नहीं होता। किसी होशियार आदमी ने उन्हें इकट्ठा किया था, उनका बड़ा-सा झुण्ड बनाया था और हाथ को हाथ सुझाई न देनेवाली इस अन्धेरी रात में नई चरनी में ले जा रहा था।

अचानक ऐसा हुआ कि आपस में सटे हुए घोड़ों के इस बहुत बड़े झुण्ड में से कुछ घोड़े अलग होकर उस चट्टान की ओर बढ़ गये, जिसके पीछे वाल्लीगुल छिपा हुआ था। पर उसी समय अपने घोड़े की पीठ पर लेट गया और उसने उसे अपनी भूखनी घास की ओर मुंह देने के लिए विवश किया। घोड़े अलग-अलग हुए, इधर-उधर बिखरे और फिर से बड़े झुण्ड में जा मिले। अरे! यह क्या, एक घोड़ा अपने छोटे-से झुण्ड को अलग ले गया। सम्भवतः पास में कोई चरवाहा नहीं था...

मुराद पूरी हो गई थी... उसके सामने मोटी-ताज़ी घोड़ी थी, इस छोटे झुण्ड में, शायद सारे झुण्ड में ही सब से अच्छी! उसके पुट्ठे बड़े मोटे-मोटे, गोल-गोल थे, अयाल कटे हुए। कत्थई घोड़े के करीब ही चरती हुई बहुत ही खूब थी वह...

वाख्तीगुल ने जीन से बालों का बना हुआ फंदा उतारा। अब वह किसी तरह का ऊहापोह नहीं करेगा। जब समझदार और अपने काम को अच्छी तरह जानने-समझनेवाला वाख्तीगुल का घोड़ा इस छोटे-से झुण्ड के बीच पहुंच गया और उसने अपने कंधे को घोड़ी से सटा दिया, तो वाख्तीगुल ने अंधेरे में पहली ही बार अचूक फंदा फेंक कर घोड़ी की गर्दन को उससे फांस लिया। ऐसे तो वाख्तीगुल उड़ते परिन्दे को भी फांस सकता था।

घोड़ी बहुत ही उद्दण्ड थी—गर्मी भर न तो उसे लगाम पहनाई गई थी और न ही उसकी अगाड़ी पिछाड़ी बांधी गई थी। वह गरजती घोड़ी डर कर हिनहिनाई और अपने झुण्ड से अलग होकर सीधी भाग चली। मगर वाख्तीगुल का घोड़ा इसके लिए तैयार था—वह कोई पहला मौका थोड़े ही था! टिटकारी या इशारा किये बिना ही वह भी अगाड़ी से पीछे-पीछे तेज़ी से भाग चला। इस तरह उसने अपने मालिक के हाथ से फंदा नहीं निकलने दिया।

[illegible] थोड़ी देर तक चलता हुआ ज़ोर लगाकर हांफती तेज़ी के साथ सीधी दौड़ती रही कि वाख्तीगुल के हाथ में पकड़ा हुआ फंदा [illegible] की भांति सनसनाता रहा।

बाट्गीगुल बहुत सावधानी और ढंग से फंदे को थामे रहा। उसने घोड़ी को इधर-उधर होने या फंदे को हाथ से निकलने नहीं दिया। अपने घोड़े की ओर वह कोई ध्यान नहीं देता था, चरवाहे का घोड़ा अपने-आप ही ठीक ढंग से चला जा रहा था, घुड़सवार की मदद करता हुआ। दौड़ती हुई घोड़ी दुलत्ती चलाती थी, ठोकर खाती थी, पर जल्द ही थक गई। तब वह चक्कर काटते हुए झुण्ड की ओर लौटने लगी। अब बाट्गीगुल ने उसे अपने हाथों की ताकत और चरवाहे की कमर की मजबूती दिखाई। फंदे को जोर से खींचते हुए वह अपनी पीठ के बल पीछे की ओर लेट गया। फंदे में फंसी हुई घोड़ी ने दायें-बायें गर्दन झटकी और फिर उसकी चाल धीमी पड़ गई। इसके बाद वह सिर झुकाकर एकदम निश्चल खड़ी हो गई।

फंदे के तारों को बहुत सावधानी से समेटते और छोटा करते, धीरे-धीरे प्यार भरे तथा अधिकारपूर्ण शब्दों से घोड़ी को शान्त करते हुए बाट्गीगुल उसके पास आया और उसने फुर्ती से उसे लगाम पहना दी। थकान और पसीने से भीगे हुए घोड़ी के पुट्ठे पर हल्का-सा चाबुक सटकारते हुए वह उसे अपने पीछे ले चला।

बाट्गीगुल से दूर हटते हुए झुण्ड के घोड़े घबराहट से इधर-उधर नजर दौड़ाने, एक-दूसरे से सटने और हेल-मेल करने लगे। घोड़ों की इस हेल-मेल की ओर भी ध्यान रखना जरूरी था। और सोचिये, बाट्गीगुल को अपने हिचकिचा जाते, यदि वह काफी बलिष्ठ नहीं होता, अपने

ऊपर बड़े-से घोड़े पर सवार और बड़ा-सा लट्ठ लिए एक हट्टे-कट्टे आदमी की झलक मिली।

यह कहीं आँखों का धोखा तो नहीं? नहीं... वह रास्ते में निश्चल खड़ा था, डंडे की तरह, न हिलता था न डुलता था। वह सोच रहा था कि यह अपना है या पराया? ज़रूर भूसा भरा है उसके दिमाग में...

वाल्गीगुल ने अपने घोड़े को ज़ोरदार एड़ लगाई और उसे आगे बढ़ाया। इस हट्टे-कट्टे आदमी ने चुपचाप अपनी लम्बी बाँह बढ़ाई और वाल्गीगुल के घोड़े की लगाम पकड़ ली। आख़िर उसकी समझ में बात आ गई! बहुत बुरा हुआ। वाल्गीगुल यह कल्पना करके काँप उठा कि बाजों का पंजा उसके कंधों को जकड़े हुए अपनी ओर खींच रहा है... मगर यह हट्टा-कट्टा बहुत ही अजीब ढंग से पेश आया। वह वाल्गीगुल के घोड़े को मानो मरे मन से, बुझे-बुझे और ढीले-ढाले ढंग से पकड़े रहा। उसने अपना हाथ ऊपर नहीं उठाया। वह किसी चीज़ की प्रतीक्षा करते और डर से नाक गुड़गुड़ाते हुए चुप रहा।

वाल्गीगुल रकाबों में खड़ा हो गया, उसने टकटकी बाँधकर उसे देखा और फिर चाबुक ही उठाकर रख दिया। हाँ, जो उसके सामने खड़ा नहीं, लाश थी। अरे, उसके सामने [illegible] खड़ा था, गुदड़ीदार कुर्ता, [illegible] भी [illegible] और [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] देखकर [illegible] भी हँसी आती थी। कौन उसका मज़ाक नहीं उड़ाता था? कौन उसका उल्लू नहीं बनाता था?

"[illegible] छोड़ दूगा... मिट्टी के माधो।" वाख़्तीगुल ने
भयानक ढंग से फुसफुसाकर कहा। उसने कोकाई के बूढ़े
गंजे सिर पर चाबुक मारकर उसकी टोपी नीचे गिरा दी।
वाख़्तीगुल ने बहुत धीरे से चाबुक मारा था। यह कहना
अधिक सही होगा कि चाबुक मारकर उसका अपमान किया
था। मगर कोकाई बोरी की तरह जीन से नीचे जा गिरा
और पहले से ज्यादा जोर से गुड़-गुड करता हुआ अपने
घोड़े की ओट में हो गया। उसने तो चीखने-चिल्लाने और
अपने साथियों को पुकारने तक की हिम्मत नहीं की। वह
जानता था वे सदा की भांति उसकी खिल्ली उड़ायेंगे और
बस, यहीं क़िस्सा ख़त्म हो जायेगा। उसके लिए तो
ज्यादा अच्छा यही है कि चुप्पी साधे रहे, रात के अंधेरे
में छिपा रह कर अल्ला से यह दुआ मांगे कि यह अजनबी
जल्दी से जल्दी यहां से चला जाये।
वाख़्तीगुल ने लगाम झटकी और घोड़े को सरपट
दौड़ाता हुआ बड़ी घाटी की ओर बढ़ चला जो चीड़ के
वृक्षों से ढकी हुई थी। वहां वह बढ़िया ढंग से छिप सकेगा,
वहां तो दिन के समय भी उसके चिह्न नहीं मिल सकेंगे...
हां, कोकाई—वह तो सालमेन, शुद्ध सालमेन का चरवाहा
था। मतलब यह कि तीर ठीक निशाने पर बैठा था,
जागती दुमों के दिल में जाकर लगा था। बेकार ही वह
दो दिनों तक सन्देहों की भावना भांपता रहा...
वाख़्तीगुल का घोड़ा सुरंग के गिर्द चक्कर काटता हुआ
तेजी से उड़ा जा रहा था। घोड़ी भी अड़े-रुके बिना

तेज़ी से, क़दम से कदम मिलाये हुए साथ-साथ चली जा रही थी। उनके सामने ठंडी घाटी का मुंह खुला हुआ था। यहां दूसरा चरवाहा दिखाई दिया।

यह चरवाहा ऊपर से दर्रे की ओर से अपने बढ़िया घोड़े को सरपट दौड़ाये आ रहा था। वाल्तीगुल का रास्ता काटते हुए वह ज़ोर से चिल्लाया:

"ए, कौन है वहां? कौन हो तुम?!"

वाल्तीगुल उसकी आवाज़, उसके विश्वासपूर्ण रंग-ढंग से फ़ौरन उसे पहचान गया। यह कोई कायर, कोई बुज़दिल नहीं है। किसी सूरत भी बचकर नहीं जाने देगा। कभी तो ख़ुद वाल्तीगुल भी इसकी जगह सालमेन की नौकरी बजाता था। वह जानता था कि किस पर भरोसा किया जा सकता है।

अपने घोड़े के अयालों पर झुकते हुए वाल्तीगुल ने चुपचाप अपना लट्ठ तैयार किया। घोड़े को सरपट दौड़ाये आते हुए चरवाहे ने भी अपना लट्ठ सिर के ऊपर उठाया और पूरे ज़ोर से चिल्लाया:

"ए भाइयो...जल्दी से इधर मेरी तरफ़ आओ! सुनते हो!.." उसके पीछे उसकी आवाज़ की प्रतिध्वनि गूंज उठी।

इसी क्षण विभिन्न दिशाओं से अन्य चरवाहों की आवाज़ें सुनाई दीं। जिस जल्दी से उन्होंने अपने साथी की पुकार का जवाब दिया, उससे साफ़ था कि वे सभी जाग रहे थे और थे भी चौकन्ने। अंधेरे में ही उन्होंने झटपट और

किसी तरह की भूल-चूक के बिना ही यह समझ लिया कि उन्हें किधर जाना चाहिये। प्रतिध्वनि ने उन्हें किसी तरह के भ्रम में नहीं डाला। याम्लीगुल को अपने पीछे तेज घोड़ों की टापों की गूंज सुनाई दी।

घोड़ों के झुण्ड के ऊपर 'मारो-पकड़ो' का भयानक शोर गूंज उठा। चरवाहे बुरी तरह से चीखते-चिल्लाते हुए मानो एक-दूसरे को बढ़ावा दे रहे थे ...वे अपने घोड़ों को उड़ाये लिये जा रहे थे... घड़ी भर में घोड़ों के मालिक और हजारों की भागनेवाले झुण्ड में खलबली मच गई।

दसियों घोड़ों के सिर और अयाल एकबारगी ऊपर हो गये, लम्बी-लम्बी पूंछें लहराईं और मानो हवा में उड़ने लगीं। घोड़े गुस्से में एक-दूसरे को काटते थे, लातें मारते थे, दुलत्तियां चलाते थे और पिछली टांगों पर खड़े होते थे। अपनी घोड़ियों और छोटे झुण्डों को अलग करने की कोशिश करते हुए घोड़े इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे। घोड़ों की टापों के इस गड़बड़ शोर में लोगों की आवाजें डूबकर रह गईं।

जैसे नदी की गहरे तल की ओर बढ़ने से लहरें भंवर बनाती हैं, उसी भांति घोड़ों की पीठें घूम रही थीं, चक्कर काट रही थीं। इसके बाद वे मिलकर एक हो गईं और जोश में आये मानो जुड़े हुए शरीरों का एक बड़ा-सा भंवर बन गया। यह भंवर लगातार एक भयानक और विनाशकारी धारा में बदलकर हजारों खुरों से धरती को रौंदता हुआ आगे बढ़ चला।

तेज़ी से, क़दम से कदम मिलाये हुए साथ-साथ चली जा रही थी। उनके सामने ठंडी घाटी का मुंह खुला हुआ था। यहा दूसरा चरवाहा दिखाई दिया।

यह चरवाहा ऊपर से दर्रे की ओर से अपने बढ़िया घोड़े को सरपट दौड़ाये आ रहा था। वाक़्तीगुल का रास्ता काटते हुए वह ज़ोर से चिल्लाया:

"ए, कौन है वहां? कौन हो तुम?!"

वाक़्तीगुल उसकी आवाज़, उसके विश्वासपूर्ण रंग-ढंग से फ़ौरन उसे पहचान गया। यह कोई कायर, कोई बुजदिल नही है। किसी सूरत भी बचकर नही जाने देगा। कभी तो खुद वाक़्तीगुल भी इसकी जगह साल्मेन की नौकरी बजाता था। *बाई जानता था कि किस पर भरोसा किया* जा सकता है।

अपने घोड़े के अयालो पर झुकते हुए वाक़्तीगुल ने चुपचाप अपना लट्ठ तैयार किया। घोड़े को सरपट दौड़ाये आते हुए चरवाहे ने भी अपना लट्ठ सिर के ऊपर उठाया और पूरे ज़ोर से चिल्लाया:

"ए भाइयो...जल्दी से इधर मेरी तरफ़ आओ! सुनते हो! .." उसके पीछे उसकी आवाज़ की प्रतिध्वनि गूंज उठी।

इसी क्षण विभिन्न दिशाओं से अन्य चरवाहों की आवाज़ें सुनाई दी। जिस जल्दी से उन्होने अपने साथी की पुकार का जवाब दिया, उससे साफ़ था कि वे सभी जाग रहे थे और थे भी बहुत-से। अंधेरे मे ही उन्होने झटपट और

किसी तरह की भूल-चूक के विना ही यह समझ लिया कि उन्हे किधर जाना चाहिये। प्रतिध्वनि ने उन्हें किसी तरह के भ्रम में नही डाला। बाख़्तीगुल को अपने पीछे तेज घोड़ों की टापों की गूंज सुनाई दी।

घोड़ों के झुण्ड के ऊपर 'मारो-पकड़ो' का भयानक शोर गूंज उठा। चरवाहे बुरी तरह से चीख़ते-चिल्लाते हुए मानो एक-दूसरे को बढ़ावा दे रहे थे ...वे अपने घोड़ो को उड़ाये चले आ रहे थे... घड़ी भर में घोड़ों के शान्त और इशारों को माननेवाले झुण्ड में खलबली मच गई।

दसियों घोड़ों के सिर और अयाल एकसाथ ऊपर हो गये, लम्बी-लम्बी पूछें लहराईं और मानो हवा में उड़ने लगी। घोड़े गुस्से से एक-दूसरे को काटते थे, लाते मारते थे, दुलत्तियां चलाते थे और पिछली टांगों पर खड़े होते थे। अपनी घोड़ियों और छोटे झुण्डों को अलग करने की कोशिश करते हुए घोड़े इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे। घोड़ों की टापों के इस गड़बड़ शोर में लोगों की आवाजें डूबकर रह गईं।

जैसे नदी की लहरें ढाल की ओर वढ़ने के पहले भंवर वनाती है, उसी भाति घोड़ो की पीठें घूम रही थीं, चक्कर काट रही थी। इसके वाद वे मिलकर एक हो गईं और जोश में आये मानो जुडे हुए शरीरों का एक वड़ा-सा भंवर वन गया। यह भंवर अचानक एक भयानक और विनाशकारी धारा मे वदलकर हजारों सुमो से धरती को रौंदता हुआ आगे बढ़ चला।

तेजी से, कदम से क़दम मिलाये हुए साथ-साथ चली जा रही थी। उनके सामने ठंडी घाटी का मुंह खुला हुआ था। यहा दूसरा चरवाहा दिखाई दिया।

यह चरवाहा ऊपर से दर्रे की ओर से अपने बढ़िया घोड़े को सरपट दौड़ाये आ रहा था। बाख़्तीगुल का रास्ता काटते हुए वह ज़ोर से चिल्लाया:

"ए, कौन है वहां? कौन हो तुम?!"

बाख़्तीगुल उसकी आवाज़, उसके विश्वासपूर्ण रंग-ढंग से फ़ौरन उसे पहचान गया। यह कोई कायर, कोई बुज़दिल नही है। किसी सूरत भी बचकर नही जाने देगा। कभी तो ख़ुद बाख़्तीगुल भी इसकी जगह साल्मेन की नौकरी बजाता था। बाई जानता था कि किस पर भरोसा किया जा सकता है।

अपने घोड़े के अयालो पर झुकते हुए बाख़्तीगुल ने चुपचाप अपना लट्ठ तैयार किया। घोड़े को सरपट दौड़ाये आते हुए चरवाहे ने भी अपना लट्ठ सिर के ऊपर उठाया और पूरे ज़ोर से चिल्लाया:

"ए भाइयो...जल्दी से इधर मेरी तरफ़ आओ! सुनते हो!.." उसके पीछे उसकी आवाज़ की प्रतिध्वनि गूंज उठी।

इसी क्षण विभिन्न दिशाओं से अन्य चरवाहो की आवाज़ें सुनाई दी। जिस जल्दी से उन्होंने अपने साथी की पुकार का जवाब दिया, उससे साफ था कि वे सभी जाग रहे थे और थे भी बहुत-से। अंधेरे मे ही उन्होंने झटपट और

किसी तरह की भूल-चूक के बिना ही यह समझ लिया कि उन्हें किधर जाना चाहिये। प्रतिध्वनि ने उन्हें किसी तरह के भ्रम में नही डाला। बाख़्तीगुल को अपने पीछे तेज़ घोड़ों की टापो की गूज सुनाई दी।

घोड़ों के झुण्ड के ऊपर 'मारो-पकड़ो' का भयानक शोर गूंज उठा। चरवाहे बुरी तरह से चीख़ते-चिल्लाते हुए मानो एक-दूसरे को बढ़ावा दे रहे थे ...वे अपने घोड़ों को उड़ाये चले आ रहे थे... घड़ी भर में घोड़ों के शान्त और इशारों को माननेवाले झुण्ड में खलबली मच गई।

दसियो घोड़ों के सिर और अयाल एकसाथ ऊपर हो गये, लम्बी-लम्बी पूछें लहराईं और मानो हवा में उड़ने लगी। घोड़े गुस्से से एक-दूसरे को काटते थे, लातें मारते थे, दुलत्तियां चलाते थे और पिछली टागों पर खड़े होते थे। अपनी घोड़ियों और छोटे झुण्डो को अलग करने की कोशिश करते हुए घोड़े इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे। घोड़ों की टापों के इस गडबड़ शोर में लोगों की आवाज़ें डूबकर रह गईं।

जैसे नदी की लहरें ढाल की ओर बढ़ने के पहले भंवर बनाती हैं, उसी भांति घोड़ों की पीठें घूम रही थी, चक्कर काट रही थी। इसके बाद वे मिलकर एक हो गईं और जोश में आये मानो जुड़े हुए शरीरों का एक बड़ा-सा भंवर बन गया। यह भंवर अचानक एक भयानक और विनाशकारी धारा में बदलकर हज़ारों सुमों से धरती को रौंदता हुआ आगे बढ़ चला।

घोड़ो का झुण्ड ऐसे घबराया और डरा हुआ था मानो बाढ आ गई हो या आग लग गई हो। इसलिए वह रास्ता न पाकर चरागाहो मे अधाधुध भागा चला जा रहा था। घोड़े एक दूसरे से बगले रगड़ते, जुड़े हुए, और कमजोरों को गिराते और रौदते हुए सरपट भागे जा रहे थे। बर्फ़ के ढेर से अलग जा गिरनेवाले ककड़-पत्थरों की भाति दम तोड़ते हुए एक वर्षीय बछेरे झुण्ड से अलग और बेहोश होकर जमीन पर गिरते जा रहे थे।

प्रतीत होता था कि मानो बादलों की अन्तहीन और कानो के पर्दे फाड़नेवाली गड़गड़ाहट घाटी से दर्रे तक पहाड़ी चरागाहों और आसपास के पर्वतो के ऊपर फैलकर निश्चल हो गई है। यह भी गनीमत ही समझिये कि घोड़ो की यह लहर खड्ड की ओर नही बह रही थी।

एक के बाद एक चरवाहा रुका और वापिस मुड़ा। बहुत देर से उन्हे अपनी गलती का एहसास हुआ। उन मे से किसी ने भी यह नही देखा कि वे किसका पीछा कर रहे है। अन्धेरे मे वे किसी भी क्षण राह भटक सकते थे।

घोड़ों का झुण्ड बडी मुश्किल से रोका और शान्त किया गया।

आखिर वे शान्त हो गये और घास चरने लगे। केवल अपने बछेरो को खोजती हुई घोड़ियो की हिनहिनाहट ही ख़ामोशी को चीरती रही।

चरवाहे एक जगह पर इकट्ठे होकर चीख़ने-चिल्लाने,

एक-दूसरे की लानत-मलामत करने और एक-दूसरे को डाटने-डपटने लगे :

"यह हुआ क्या था? कौन सब से पहले चिल्लाया था? वह कम्बख़्त शैतान कहां से आ धमका था? किसने उसे सब से पहले अपनी आखों से देखा था?"

मगर किसी ने भी न तो कुछ देखा था और न ही कोई कुछ जानता था। मगर रात के समय चीखा न जाये, यह भी कैसे हो सकता है? अंधेरे में एक की पुकार दूसरे के लिए नजर का काम देती है. .

चीख़ने-चिल्लानेवालों ने जब ध्यान से देखा-भाला, तो पाया कि बड़ा चरवाहा गायब है।

ये लोग अब घाटी में लौटे, इधर-उधर बिखर गये और एक-दूसरे को धीरे-धीरे आवाज़ देते हुए जामान्ताय को पुकारने लगे।

चुस्त कोकाई ने चरागाह की चट्टानी किनारोंवाली ढाल के नुकीले पत्थरों पर उसे जा ढूढ़ा। जामान्ताय धीरे-धीरे कराह रहा था, उस से ताज़ा रक्त की गन्ध आ रही थी, उसका लट्ठ पास ही पड़ा था लेकिन उसके घोड़े का कही अता-पता नही था।

"ए! .." कोकाई चिल्लाया। "इधर आकर देखो... किसी ने इसका सिर तोड डाला है... उसका तो सारा ख़ून ही बह गया है!"

चरवाहे जामान्ताय को उठा ले चले।

"जिन्दा है! सास ग्रा–जा रही है... किसने ऐसा किया? किसने?"

बड़ा चरवाहा घाटी की ग्रोर इशारा करता हुग्रा ग्रस्पष्ट-सा कुछ वड़वड़ाता रहा।

इन्ही पत्थरो पर उसकी वाख़्तीगुल से मुठभेड़ हुई थी। घोडे को भगाये ग्राते हुए जामान्ताय ने ही गुस्से से पहले वार किया। उसकी चोट हल्की रही, निशाने पर नही वैठी। लट्ठ का विचला हिस्सा कधे पर लगा। मगर जवावी चोट खूव करारी रही – घोड़ा ग्रौर घुड़सवार ढाल से नीचे जा गिरे...

जामान्ताय ग्रजनवी को पहचान नही पाया। मगर इस वात को ध्यान में रखते हुए कि चोर ने रात के समय कैसी होशियारी से काम किया, ढेर सारे रखवालो की ग्रांखों मे धूल झोंक गया यह जाहिर था कि उसे ग्रपने काम मे कमाल हासिल है, वह हेरीफेरी के काम मे घुटा हुग्रा है। घोडे का मूल्य ग्राका जाता है उसकी तेज़ी से, भेड़िये को जाना जाता है उसकी चुस्ती से...

वाख़्तीगुल दुलकी चाल से घोडे को दौड़ाता हुग्रा इत्मीनान से घाटी को लाघ रहा था। शुरू में तो वह ग्राहट लेता रहा, फिर शान्त हो गया ग्रौर उसके घोड़े ने भी कनौतियां वदलना वन्द कर दिया। उसका पीछा नही किया जा रहा था। फिर भी वाख़्तीगुल ने चीड़ वृक्षों के वीच से कई चक्कर काटे। उसने नम भूमि पर घोड़े को चक्कर लगवाये ग्रौर चिकने पत्थरों पर से ग्रागे वढा। वैसे भी वरसात के वाद उसके निशानों को पहचानना सम्भव नही था।

बाख़्तीगुल अपना शिकार लिए हुए बढता चला गया। वह घोड़ी को बार-बार प्यार से देखता हुआ बहुत ख़ुश हो रहा था। बहुत ही पसन्द आई थी उसे वह।

घोड़ी की गर्दन पर हाथ फेरते हुए उसने उसके कटे हुए अयाल के नीचे छूकर देखा तो वहां चर्बी की मोटी तह पाई। क्या उसे बहुत बडी सफलता हाथ नही लगी थी? बहुत अर्से से बाख़्तीगुल कभी इतना ख़ुश नही हुआ था।

"बहुत ख़ूब है...", उसने प्रशसा करते हुए धीरे से कहा। "बहुत बढ़िया जानवर है।.." इसलिए कि घोड़ी को कही नज़र न लग जाये, उसने अपनी उंगलियो पर थूका।

पानी लगातार बरसता जा रहा था। भीगा-भीगा अंधेरा बाख़्तीगुल का मुंह धो रहा था। वह मुस्कराता हुआ गीली मूंछो पर ताव दे रहा था। बाख़्तीगुल को राह से भटक जाने का डर नहीं था। बेशक आकाश अंधेरे की चादर में लिपटा था, पर्वत भी काले-काले थे और उसके घोड़े की थूथनी के सामने काले ऊन के उलझे-उलझाये गोले जैसा अंधेरा छाया हुआ था, पर बाख़्तीगुल को इस अन्धेरे में आकाश भी दिखाई दे रहा था, उसे पहाड़ और अपना रास्ता भी बहुत साफ नजर आ रहा था।

पौ फटने के बहुत पहले ही उसने गन्ध से यह अनुभव कर लिया कि वह सारीमसाक्त के जंगल के निकट पहुं गया है। चढ़ाई की तुलना मे उतराई हमेशा जल्दी से त हो जाती है... मालिक की तरह उसका घोड़ा भी काम रे

जी चुराना नही जानता था। मगर जब जंगल के छोर पर राल की तेज गन्ध नाक में घुसी, तो वाख़्तीगुल ने नाक-भौह सिकोड़ी, मुह फेर लिया और उसे उबकाई-सी आने लगी। उसने बचा-बचाया सूप पिया, घोड़े से उतरा, घोडे की काठी उतारी, उसका तन पोंछा, उसकी पीठ, पहलू और छाती को सहलाया। घोड़ा भी जरा दम ले ले, उसका पसीना सूख जाये—इसे भी भूख सता रही होगी।

एक पुराने चीड़ वृक्ष के नीचे काठी पर बैठा हुआ वाख़्तीगुल सोच मे डूब गया। उसके घोड़े ने अपनी थूथनी से धीरे से मालिक के कधे को हिलाया। हां, सचमुच चलने का वक्त हो गया था। उजाला होने तक दूर निकल जाना चाहिए। उसे अब देर नही करनी चाहिए, चोरी का माल ले उडना चाहिए।

वाख़्तीगुल ने फिर से घोड़े पर जीन कसा और उसके पिछले बन्द को जोर से बाध दिया ताकि लगातार ढाल से नीचे उतरते समय जीन खिसक कर घोड़े की गर्दन पर न पहुंच जाये।

३

सुबह होने को थी, जब पानी बरसना बन्द हो गया, कुछ कुछ गर्मी हो गयी। वाख़्तीगुल को नींद ने धर दबाया। वह मूंछों से छाती को छूता हुआ जीन पर बैठा-बैठा ही सो गया।

अपने ही खर्राटे की आवाज से वह चौक कर जागा, डर से सिहरा और उसने फटी-फटी आंखों से इधर-उधर देखा। नीद में उसे लगा था मानो उसका गला घोटा जा रहा है।

उजाला हो गया था। ओह, किसी की नजर न पड़ जाये उस पर...

वाख़्तीगुल चिचड़ियों की भांति सिमटे-सिमटाये और जाले के समान उलझे-उलझाये कंटीले झाड़-झंखाड़ के बीच लुकी-छिपी लम्बी राह पर बढ़ता चला गया।

अब वाख़्तीगुल दिन को भी कही न ठहरा, मजिल की ओर बढ़ता ही चला गया। उसने न खुद चैन की सास ली और न घोड़ो को ही दम लेने दिया।

"घर पहुंचना चाहिए, बच्चे इन्तज़ार में होगे..." वाख़्तीगुल घोड़े के कान में बुदबुदाता रहा।

वाख़्तीगुल का झोपड़ा अनाथ की तरह दूसरों से अलग-थलग एक वीरान पहाडी घाटी में आश्रय लिया हुआ था। इस इलाक़े में से धूल भरे कारवा के रास्ते नही गुज़रते थे, लेकिन यहां चुराये हुए घोड़ो का पूरा झुण्ड भी छिपाया जा सकता था। वाख़्तीगुल का यही जन्म हुआ था और यही उसने अपने मा-बाप की मिट्टी ठिकाने लगाई थी। यहां उसका अपना घर था।

घर के क़रीब पहुचने पर वह घोड़े से उतरा, अगाड़ी बांधी, अपनी टागें सीधी करता, सूखे जबान फेरता और झूमता हुआ घर की ओर

वर्फ पड़ने मे अभी कम से कम एक महीने की देर थी, इसलिए परिवार वाड़े के निकट खड़े फटे-पुराने और धुएं से काले हुए खेमे में रहता था।

बाख़्तीगुल खासा और अपनी थकी-हारी मुस्कान को छिपाने के लिए काली मूछों को मरोड़ने लगा। उसे हातशा दिखाई दी। धूप के कारण विल्कुल काली-सी हुई और चिथड़ों से जैसे-तैसे अपना तन ढके। वह चूल्हे के पास कामकाज मे लगी थी, बच्चों के लिए चाय बना रही थी। वाख़्तीगुल के तीन बच्चे थे — सबसे बड़ा सेइत दस साल का था, उससे छोटा जुमबाई पाच साल का था और दो साल की सांवली तथा चचल बातिमा अभी मां का दूध पीती थी। दो बेटे और एक बेटी... यही सारी दौलत थी वाख़्तीगुल और हातशा की।

बाप के आने पर बच्चों ने न तो कोई शोर-गुल किया, न किसी तरह की कोई हलचल ही हुई। फिर भी उसके आते ही धुएं से काले हुए ख़ेमे में जैसे उजाला हो गया। सुन्दर-सुगढ़ हातशा पति को देखते ही बुत-सी बनी रह गयी, कुछ शुभ-अशुभ की प्रतीक्षा करती हुई। वाख़्तीगुल पुरुष की प्रतिष्ठा को बनाये हुए शान्त भाव से और चुपचाप घर के क़रीब आया, दहलीज़ के पास पड़ी टहनियों को लाघा, ख़ेमे मे प्रवेश किया और खंखार कर दरवाज़े के सामने गृह-स्वामी के मुख्य स्थान पर दीवार के पास जा बैठा। कठिन मंज़िल के बाद अपने झोंपड़े मे यह स्थान कितना प्यारा होता है!

मगर मूछों को मरोड़ता हुआ वाख़्तीगुल बहुत देर तक चुप न रह सका। अपने को धीर-गम्भीर बनाये न रख पाकर उसने कनखियों से चूल्हे में दहकते लाल अंगारों को देखा और नाक सिकोड़ी।

"हां तो बीवी कैसे काम चल रहा है... कुछ थोड़ा-बहुत खाने को मिल सकेगा? .."

हातशा का मन हुआ कि भागकर अपने पति के चौड़े तथा मजबूत कंधों से लिपट जाये। मगर उसकी हिम्मत न हुई। उसने दहलीज के पास खड़े रहकर ही आदर और नम्रता से पूछा:

"आपका सफ़र कैसा रहा?"

"जल्दी करो..." वह जवाब में बुदबुदाया। "मेरे पास वक़्त नही है!"

घर में खाने को जो कुछ भी था, हातशा सब निकाल लाई। भेड़ की ख़ुश्क की हुई पारदर्शी अंतड़ी में वसन्त के दिनों से सम्भाल कर रखे हुए घी की भी उसने कंजूसी नही की। यह घी खाने-पीने की चीजें रखने के सन्दूक मे सबसे नीचे रखा हुआ था। उसने इसे पति के सामने रख दिया और उसके लिए गर्म-गर्म चाय डाली। जब-तब उसने पति की कोहनी, उसके कंधे से अपना तन छुआने की भी कोशिश की। वाख़्तीगुल गर्म चाय को लम्बी-लम्बी चुस्किया लेकर पी रहा था। हातशा वाग-वाग हुई जा रही थी और वाख़्तीगुल से यह बात छिपी न रह सकी।

परिवार के लिए तो आज जैसे पर्व का दिन था। बच्चों

की आखें चमक रही थी, उनकी ख़ुशी तो जैसे बिखरी जा रही थी। जुमवाई और वातिमा चुपके-चुपके एक-दूसरे को पैर मार रहे थे, शरारती ढंग से मुस्करा रहे थे। सेइत ने 'शी-शी' करते हुए उन्हें डाटा, पर ख़ुद उसकी भी वाछे खिली जा रही थी।

वाक़्तीगुल का मन-मोर ख़ुशी से नाच रहा था। बहुत दिनों वाद आज पहली बार उसके मन का बोझ हल्का हुआ था। मगर उसके चेहरे से उसकी इस ख़ुशी को नही भापा जा सकता था। वेकार बोलते जाना उसे पसन्द नही था। वह बैठा हुआ चाय पीता और मूछों पर ताव देता रहा।

उसने एक के वाद एक चाय के तीन प्याले ख़त्म किये, मूछे पोछी, उठा और खेमे से वाहर चल दिया। दहलीज़ के पास जाकर उसने मुड़े विना पत्नी से ये शब्द ऐसे कहे मानो कोई वहुत ही तुच्छ वात कह रहा हो:

"बोरी लेकर मेरे पीछे-पीछे आओ।"

हातशा तो वहुत वेसब्री से यही शब्द सुनने का इन्तज़ार कर रही थी। खेमे मे झटपट सब कुछ ठीक करके उसने वडे वेटे सेइत को हिदायत करते हुए कहा,

"घर से वाहर कही नही जाना। आग का ख़्याल रखना। अगर कोई आकर कुछ पूछे तो कहना कि मा उपले लेने गई है, अभी आ जायेगी।"

खेमे मे सिर्फ वच्चे ही रह गये। उन्होंने हो-हुल्लड मचाना शुरू कर दिया। फटे हुए नमदे के पीछे से कभी चीख़-

चिल्लाहट, कभी रोना-धोना तथा कभी ठहाके सुनाई देने लगे। जुमवाई को तो लड़े-भिड़े बिना चैन नहीं पड़ता था। वह भाई-बहन को खिझाता-चिढ़ाता और उनके हाथों से सूखी मलाई के मजेदार टुकड़े छीन लेता था।

हातशा को निकट ही लुकी-छिपी जगह में, हिमनदी से बनी हुई छोटी-सी सूखी झील के तल में अपना पति मिल गया। तल पथरीला था और उसकी दरारों में पिछले वर्ष की बर्फ जमी हुई थी। झील के खड़े तट जलवायु से जीर्ण-शीर्ण, सींगों की भांति नुकीले और सफेद-गुलाबी पत्थरों से घिरे हुए थे। इन पर उगे हुए घास के लम्बे गुच्छे बकरों की दाढ़ी जैसे लगते थे। जगह ऐसी थी कि आसानी से नजर न आये और यहां आने का मतलब था घोड़े की टांगें और अपनी गर्दन तोड़ना।

वाख़ीगुल घोड़ी के फैले हुए धड़ के क़रीब उकड़ू बैठा था। उसने उसकी खाल उधेड़नी शुरू कर दी थी। पथरीले गढ़े में अन्धेरा-सा था, ठंडक थी और कच्चे मास की तेज गन्ध आ रही थी। हातशा झटपट काम में जुट गई और फुर्ती से पति का हाथ बंटाने लगी।

वाख़ीगुल ने जब घोड़ी की अन्तड़ियां बाहर निकालीं, तो हातशा को काफ़ी काम करना पड़ा। उन्हें छांटना औरतों का काम है और जितना सम्भव हुआ हातशा ने इसे ढंग से करने की कोशिश की।

साथ ही साथ उसने चपटे पत्थर पर फुर्ती से आग भी जला दी। वह यह नहीं भूली थी कि पति ने एक अर्से से

मांस चखकर नही देखा। उसने बैंगनी रंग का चर्बीवाला गुर्दा और बड़े चाव से चुने हुए मांस के दो-तीन और टुकड़े दहकते अंगारों के अदर रख दिये —"ख़ुश होकर खाये कुनबे को खिलानेवाला मेरा मालिक," वह सोच रही थी।

बाख़्तीगुल बेचैनी से आग की ओर देख रहा था। धुआं देखकर कही अनचाहे मेहमान यहां न आ धमके... पर वह चुप्पी लगा गया। भूख समझ-बूझ पर हावी हो जाती है, जबान में ताला लगा देती है। भगवान इस आग की रक्षा करना, खा लेने देना यह मास! ..

ये दोनों शाम होने तक लगातार काम में जुटे रहे। उन्होने धड़ के टुकड़े कर खाल और मांस को भरोसे की जगह पर छिपा दिया और ऊपर पत्थर रख दिये। केवल हफ़्ते भर के लिए कुछ मांस और अन्तड़ियां अलग रखी गई थी। यह हिस्सा बड़ा नही था, मगर चरवाहे के परिवार के लिए वह पर्व के दिन के भोजन की तरह बहुत काफी था। झुटपुटा होने पर वे ख़ेमे मे लौट आये।

चूल्हे के पास दौड़-धूप करती हातशा को देखता हुआ बाख़्तीगुल मूछो में छिपे-छिपे मुस्करा रहा था। हातशा ने पानी से भरी पतीली आग पर रखी, उसमें घोड़ी के स्तन का नर्म-सा मास और हृदय और अयाल के नीचेवाली बहुत-सी चर्बी डाल दी। साथ ही उसने अंगारों पर कलेजी भूनकर बच्चो मे बांट दी।

रात ठंडी थी, मगर ख़ेमे मे गर्मी थी, घरेलू आराम था। सेइत टहनियां ला लाकर मा के पास जमा करता जाता

था। लड़का बेशक बहुत लगन से अपना काम कर रहा था, फिर भी वह वाख़्तीगुल को धोखा नहीं दे पाया। उसने बेटे को अपने पास बुलाया, मगर वह तो जैसे मन मारकर उसके पास आया। मेइत अचानक उदास हो गया था।

उस के साथ पहले भी कई बार ऐसा हो चुका था। अजीब था यह लड़का, उम्र के लिहाज से कहीं अधिक चिन्तनशील, चीज़ों को परखने-समझनेवाला और कहीं अधिक समझदार। घर में अगर उदासी का वातावरण होता, बोझिल ख़ामोशी छाई होती, बड़ों में झगड़ा हो गया होता, तो वह अचानक ही नाचने और मेमने की तरह उछलने-कूदने लगता। पर कभी जब घर में हंसी-ख़ुशी होती तो वह घुटनों के बीच मुंह छिपाये बैठा रहता। कोई उठा तो ले उसे ज़मीन से! जब उसे इस तरह का दौरा पड़ता तो बेशक उसके सामने सोना फेंक दिया जाता, वह उसकी ओर भी आंख उठाकर न देखता! बुरी तरह पिटे हुए पिल्ले या पागल की तरह देखता रहता दर्द भरी और उदास-उदास नज़र से। वह तो मानो अंधा और बहरा हो जाता, मां-बाप तक के पुकारने पर घूमकर भी न देखता।

इस समय भी वह सोच मे डूब गया था, किसी वयस्क की भांति लुटी-लुटी-सी थी उसकी नज़र, बिना मूंछोंवाले होंठों पर दर्दभरी और अपराधी की सी मुस्कान...

वाख़्तीगुल ने उसे अपने पास बिठा लिया।

जुमबाई और बातिमा भी झटपट बाप की ओर लपके और उस के साथ ऐसे आ चिपके, जैसे पिल्ले चूचियों से।

वे श्राग से दूर बैठे थे इसलिए हातशा ने खाल के कोट से इन चारों को ढक दिया।

बच्चे शान्त हो गये। उनकी निकटता से चैन की मधुर और बहुत प्रिय श्रनुभूति हो रही थी। पतीली में मास उबल रहा था, खेमे मे प्यारी-प्यारी गंध बसी थी और हातशा हंसी-मज़ाक करती हुई फुर्ती से इधर-उधर श्रा-जा रही थी। बास्तीगुल को मानो रजाई के पार से उसकी श्रावाज सुनाई दे रही थी। उसे पता भी न लगा कि कब उसकी श्राख लग गई।

हातशा ने तग मुहवाली गागर में गर्म पानी डाला और पति को हाथ धो लेने के लिए श्रावाज दी। बास्तीगुल ने बड़ी मुश्किल से पलके खोली। उसकी श्राखें धुंधली-धुंधली थी और धुएंदार लपटों के प्रकाश में उसे ऐसे प्रतीत हुश्रा मानो उनमे खून तैर रहा हो। नीद मे उसकी पीठ श्रकड़ गई थी और पैर सुन्न हो गये थे। उसने जम्हाई ली, सिहरा श्रौर ऊंघते-ऊंघते ही श्रपने साथ चिपके हुए बच्चों को परे हटा दिया।

"श्रोह, मैं तो थककर बिल्कुल चूर हो गया हूं.." गागर की श्रोर चुल्लू बढ़ाये हुए वह बड़बड़ाया।

"श्रभी, मेरे प्यारे, श्रभी. ." हातशा ने बहुत स्नेह, बड़े प्यार से कहा।

पतीली को श्राग पर से उतारकर उसने तश्तरी मे मांस डालने के लिए झटपट लकड़ी का कलछुल उठा लिया। बास्तीगुल ने ज़मीन पर से श्रपनी पेटी उठाई, मियान में

से काले दस्तेवाली लम्बी, पतली छुरी निकाली और अंगूठा फेरकर उसकी धार की जाच की। छुरी बहुत बढ़िया थी, मास को मक्खन की तरह काटती थी। बाख़्तीगुल ने गर्म पानी से छुरी को धोया।

"अभी, अभी प्यारे..." हातशा ने दोहराया। इसी क्षण बाहर से कुत्तों की भूक सुनाई दी।

बूढ़ी कुतिया और उसके दो पिल्ले एकसाथ भौंक रहे थे। उनकी भूक से बाख़्तीगुल समझ गया कि वे बाड़े की तरफ़ दौड़े आ रहे हैं।

हातशा को तो जैसे काठ मार गया, कलछुल पतीली के ऊपर ही रह गया और वह डरी-सहमी नजर से पति की ओर ताकने लगी।

धरती में से मानो अनेक घोड़ों की टापें फट पड़ी और कुत्तों की भूक उन्ही में डूबकर रह गई। बाख़्तीगुल ने पत्थरों पर रगड़ खाते हुए चरवाहों के भालों की जानी-पहचानी आवाज को साफ तौर पर पहचान लिया। ये भाले स्तेपीवालों के आजमाये हुए हथियार थे।

"मांस को ढक दो... मुसीबत आई कि आई!" उसने दबी-घुटी आवाज में कहा।

हातशा हवा में उड़ते हुए पंख की भांति इधर-उधर डोलने लगी। उसे पतीली का ढक्कन ही किसी तरह नहीं मिल रहा था। घोड़ों की टापों की आवाज निकट आ रही थी। पति खीझता हुआ गुस्से से उसकी ओर देख रहा था। हातशा के तो हाथ-पैर ही फूल गये। कलछुल को हिलाते-

डुलाते और पसीने से तर-ब-तर होते हुए वह मानो बेमानी फुसफुसाहट मे दोहराती रही·

"अभी, अभी. ."

वाख़ीगुल ने दात पीसकर गाली दी। हातशा ने हड़बडी में जमीन पर से चटाई उठाई और उसी से पतीली को ढक दिया। उसने कलछुल को पानी से भरी बालटी में फेंककर ऐसे हाथ पीछे खीचा मानो वह जल गया हो। चटाई के नीचे से भाप बाहर निकल रही थी, मगर हातशा का इसकी ओर ध्यान नही गया। उसकी टांगों ने बिल्कुल जवाब दे दिया था और वह जहां की तहां जमीन पर धम से बैठ गई।

पूछे-ताछे और सलाम-दुआ किये बिना ही अजनबी खेमे मे घुसते आ रहे थे। उनके चेहरो से साफ जाहिर था कि जल्द ही कोई बिजली गिरनेवाली है। ये कोजीबाकी थे, गुडे, हट्टे-कट्टे, अधेड उम्र के, जोर-ज़बरदस्ती और रातो को लूट-मार करनेवाले। इनकी चाल-ढाल मे बेहयाई थी, नजर मे नफरत। पहली ही नजर मे पता चल जाता था कि ये घूसों और डडों से बात करते है, उन्हे यह बर्दाश्त नही कि कोई उनकी बात काटने की हिम्मत करे।

बूटों पर कोडा मारता हुआ मोटी तोंद और मोटे चुतडोंवाला साल्मेन बड़ी अकड, बडे रोब के साथ खेमे मे आया। उसकी चमड़े की चौड़ी पेटी चादी से मढी हुई थी। उसके साथ-साथ ही कई अन्य हट्टे-कट्टे, खा-पीकर खूब मोटे-ताजे हुए गुडे भीतर आये। वे वाख़ीगुल के सामने तनकर खड़े हो गये।

ख़ेमे में जमघट हो गया, मगर पीछे से अन्य लोग रेल-पेल करते हुए बाई के निकट पहुचने की कोशिश कर रहे थे। सबसे बाद में लाल दाढी और पैनी नज़रवाला एक दुवला-पतला आदमी फुर्ती से भीड़ को चीरकर आगे आया। उसने तो बाल्तीगुल की ओर देखा तक नहीं, ज़ोर से नाक बजाई और मानो डुबकी मार कर डर से बांवरी-सी हुई हातशा का कंधा छूते हुए उसके पास अलाव के क़रीब जा लेटा। वह उससे दूर हट गई, मगर उसने उसे आख मारी और वेहयाई से मुस्कराया। मसखरे और लफंगे तो हर जगह ही तरंग में रहते हैं।

सुर्ख़ चेहरेवाले एक हट्टे-कट्टे जवान ने भयानक रूप से आखें तरेरी, नाक फड़फड़ायी और मुंह को टेढ़ाकर अपनी कटी हुई भूंछों पर जवान फेरी और किसी तरह की भूमिका वाधे विना ही कहा :

"ए, कल रात तुम चरागाह में चरते हुए हमारे घोड़ों के झुण्ड में से एक घोड़ी चुरा लाये और तुमने रखवाले जामान्ताय का सिर भी तोड़ डाला। ज़रा-सी समझ रखनेवाला भी यही कहेगा कि तुम्हारे सिवा यह और किसी की करतूत नही हो सकती। फिर सुबह को पहाड़ों में दो घोड़ो के साथ एक सवार को देखा गया। दिन ढलते समय किसी ने तुम्हारे ख़ेमे के करीव से धुआ निकलता देखा। मतलब यह कि मामला बिल्कुल साफ है। लुटे हुए जवान तो अपने बाप को भी क्षमा नही करते। और हमसे तो तुम्हे इसकी उम्मीद ही नहीं करनी चाहिए . . . अव बोलो तो !"

गुडो के इस गिरोह को देखकर वाख्तीगुल डरा-घबराया नही, यद्यपि वह अच्छी तरह समझता था कि इन सगदिल और बेवकूफ लोगो से किसी तरह के रहम-तरस की उम्मीद नही की जा सकती। उसने अपने दिल को मजबूत किया और मानो कसम खाते हुए मन ही मन यह दोहराता रहा— "मेरा सच, तुम्हारा झूठ। मैं चाहे कुछ भी क्यो न करूं सालमेन द्वारा की गई ज्यादती के मुकाबले मे सब कुछ कम ही रहेगा!" इसलिए जवान को उत्तर न देकर उसने बाई से पूछा.

"लगता है कि तुम मुझ पर चोरी का इलजाम लगाना चाहते हो? कब चोर था वाख्तीगुल?"

सालमेन ने हाफते हुए उत्तर दिया

"अपने को दूध-धोया साबित करने की कोशिश न करो!"

बाख्तीगुल के चेहरे पर पहले की तरह ही दृढ-सकल्प की छाप अंकित रही।

"मेरी क्या हस्ती है तुम्हारे सामने! तुम जो मेरे देनदार हो, मैं भला तुम्हारी क्या बराबरी कर सकता हू!"

सालमेन तो आन की आन मे लाल-पीला हो गया, गुस्से से उसकी सास तेज़ हो गई।

"ओह, तुम... तुम. . निरे साप हो .."

"पहले सबूत पेश करो! किसने देखा मुझे घोड़ी चुराते? कौन गवाह है इस बात का?"

"घबराओ नहीं, गवाह भी आ जायेगा .."

"कहां है वह? मेरे सामने आकर बात करने दो उसे।"

"बहुत चालाक बनते हो!" बाई ने उसकी बात काटते हुए कहा। "घोड़ी चुरा लाये, झुण्ड मे खलबली मचा आये... एक ही रात मे इतना नुकसान! यह करतूत तुमने की, जिसे मैंने अपने हाथो से पाल-पोसकर बड़ा किया!"

"वह तो जाहिर है कि तुमने ही पाल-पोसकर बड़ा किया है मुझे। इसी लिए मेरे साथ मनमानी करते हो! तुम इसी के आदी हो! कहो, तो क्यों मेरे पीछे पंजे झाड़कर पड़े हो?"

"तुम्ही ने मेरे साथ ज्यादती की है और उल्टे मुझे ही अपराधी ठहराते हो?"

"जैसे कि तुम किसी चीज़ के लिए अपराधी नही हो!" बाई बहकी-बहकी नजर से इस चरवाहे को देखता रहा।

"क्या बिगाडा है मैंने तुम्हारा?"

"यह पूछो कि क्या नही बिगाड़ा। तुमने मेरी आत्मा निकाल ली। सगे भाई की जान ले ली। पीट-पीट कर उसे मार डाला..."

"तो यह बात है! मतलब यह कि तुम्हें मुझसे ख़ून का बदला लेना है?"

वाक़्तीगुल ने सीने पर हाथ रख लिये।

"ख़ुदा ने ख़ुद ही तुम्हारी ज़बान पर ये लफ़्ज़ रख दिये... तुमने ख़ुद ही ये शब्द कह दिये।"

"तुम्हारा दिमाग चल निकला है! पेच ढीले हो गये हैं क्या?"

वाख़्तीगुल ने दुखी होते हुए सिर हिलाया।

"मरनेवाले को तुमने चैन से मरने भी नहीं दिया... न तो कोई अच्छे शब्द कहे, न कोई मदद की! आध बरस तक वह तड़पता रहा, तुमने एक निकम्मी भेड़ तक न भेजी। मरने से पहले दिलासा पाने की उसकी आशा भी बेकार रही..."

बाई ने अपनी फूली-फूली आंखों को सिकोड़ा, जबान से च-च की।

"ओह, तो बात को यह रुख़ दे रहे हो... अच्छा तो जोड़ लो हिसाब! बहुत देना है क्या मुझे तुम्हें? शायद मेरी कुल दौलत में से आधी तुम्हारी है? झपट लो, देर न करो! और क्या कुछ लेना है तुम्हे कोजीत्राकों से, साल्मेन से?"

भीड़ में खुशामद और धमकी भरी हंसी सुनाई दी। मगर वाख़्तीगुल के चेहरे पर जरा भी घबराहट नहीं आई। मैं अकेला हूं तो क्या! सचाई मेरे साथ है!

"हिसाब जोड़ने की कहते हो, तो ऐसा ही सही। बीस जाड़ों तक मैंने बर्फ ओढ़ी और बर्फ बिछाई, गर्मियों में रात रात भर पलक भी न झपकी। बीस वसन्तों तक खुशी नहीं देखी, बीस पतझड़ो तक शिकायत नहीं की। न दिन देखा, न रात, तुम्हारे घोड़ों को चराता रहा। बेचारा तैक्नीगुल तुम्हारी भेड़ों के साथ इसी तरह जान खपाता रहा। बारह बरस हुए झुलशा को मेरी बीवी बने। तभी से वह तुम्हारी भी दासी रही, तुम्हारी मा की सेवा करती

रही। तपेदिक़ से तुम्हारी मां घुलती जाती थी और साथ ही मुरझाती जाती थी मेरी बीवी की जवानी, उसकी ख़ूबसूरती। इन सब का क्या फल मिला हमें? बस इतना ही न, कि जब तक भूख से दम न निकल जाये, हम इसी चक्की में पिसते रहें?"

"समझ गया, समझ गया... बड़े कमीने, बहुत घटिया हो तुम!" साल्मेन चीख़ उठा और सभी ओर उसकी लारें बिखर गईं। "तुम्हारी रग-रग को पहचानता हूं मैं। तुम्हारी यह हिम्मत! ख़ुद चोर हो और मुझे शर्मिन्दा कर रहे हो। अगर तुम्हारी ज़बान न खींच ली तो कहना... घोड़ी कहां है?"

"घोड़ी अदालत में जाकर मागना।"

"मागना? ओह, पाजी, अबे उल्लू! ओ भिखमंगे... तुम हो किस खेत की मूली?"

"तुम्हें अपनी ताकत का घमंड है, मुझे अपनी सचाई का। हो जाय हमारा इन्साफ!"

"घबराओ नहीं, हो जायेगा इन्साफ! बहुत बढ़-चढ़कर बातें कर रहे हो, बड़े बकवासी कहीं के! तुम कोजीबाकों से पंजा लड़ाना चाहते हो? अदालत में जाना चाहते हो, इन्साफ की माग करते हो? अच्छी बात है... अदालत भी हो जायेगी! तुम्हारी जबान तो कैंची की तरह चलती ही है, इसलिये जाओ अदालत में! वहां तुम्हें, तुम्हारी करतूत का फल मिल जायेगा! घोड़ी फ़ौरन वापिस करो! अदालत में देखा जायेगा कि किस को क्या मिलता है...

आखिरी बार पूछ रहा हूं–घोड़ी कहा है? बोलो!" इतना कहकर गुस्से से आग-बबूला होते हुए साल्मेन ने अपना कोडा लहराया।

वाख्तीगुल तो हिला-डुला भी नही मानो इस से उसका कोई सरोकार ही न हो। उसने कनखियो से देखा कि वाई के गुडे अपने लट्ठ साधे हुए उसकी ओर सरकते आ रहे हैं। वे तो सिर्फ इशारे के इन्तजार मे थे।

वाख्तीगुल ने गहरी सास लेकर कहा:

"तुम्हारी घोडी का तो यहा नाम-निशान भी नही..."

"कहा गई?"

"एक दोस्त को दे दी कि वह कही दूर ले जाये। दोस्त एतवार के लायक है, धोखा नही देगा..."

"झूठ बोलते हो, लानत है तुम पर!"

"झूठ बोलता हूं तो मत पूछो! जवाब नहीं दूगा।"

तब तन्दूर के पास लेटा हुआ फुर्तीला लाल दाढ़ीवाला कुहनियो के बल ऊचा उठा और अपनी खरखरी आवाज़ मे बेवकूफों की तरह बोला:

"ए गूगे... इनकार करने मे क्या तुक है? कौन बेमतलब घोड़ी भगाकर लायेगा? खूब तमाशा है यह भी! मेरी यही मौत हो जाये अगर मैं झूठ बोलू, इसी पतीली में, जिस पर मालकिन की नज़र टिकी हुई है, वह है, जिसे मेरी नाक अनुभव कर रही है। नाक मे गुदगुदी-सी हो रही है... यह मास की गध है, जवानो! कसम खाता हूं, यह वही रगीली घोड़ी है... कहां से आई यह तुम्हारे पास, मालिक? बताओ तो, हम सुनना चाहते हैं।"

वाक़्तीगुल ख़ामोश रहा, हातशा की नज़र धरती पर टिकी हुई थी। लाल दाढ़ीवाले ने उछलकर भाप के कारण अन्दर की ओर से गीली हुई चटाई को पतीली पर से झटके के साथ उतारा।

"बिल्कुल ऐसा ही है! ढक्कन का कही अता-पता नहीं, अनजाने ही ख़ज़ाना हाथ लग गया!.. तो प्यारे मेहमानो, तुम्हारे ही लिये तो है। इन्तजार किस बात का है? जवानो, धो लो हाथ। हातशा फुर्ती से तश्तरी बढ़ा दो!"

साल्मेन के गिरोह के लोग एक-दूसरे को कोहनियाते हुए बाई के निकट हो गये।

शर्म की कड़वाहट से बेज़बान हुई हातशा ने बड़ी तश्तरी बढ़ा दी।

लाल दाढ़ीवाले ने ख़ुद मास निकाला और टुकड़ों मे काटकर तश्तरी मे डाला। साल्मेन और कोई दस हट्टे-कट्टे जवान आस्तीनें चढाकर मांस के चर्बीवाले, नर्म-नर्म और भापवाले टुकड़ों पर टूट पड़े।

उन्होंने वाक़्तीगुल को तो झूठ-मूठ भी शामिल होने को नही कहा। घर का मालिक एक तरफ खड़ा हुआ भूख की राल निगलता रहा। प्यारे मेहमान अपनी पीठों से उसके सामने दीवार बनाकर खड़े हो गये।

हातशा नफरत और हिकारत मे जमीन ताक रही थी। उसने अपने जीवन में बहुत-सा कमीनापन देखा था, मगर इसकी तो मिसाल ही नही थी!

जवान लोग और बाई खूब मुंह भरकर गाल

और चप-चप की आवाज़ करते हुए मांस हड़पते रहे... कम्बख़्तों का पेट भी नहीं फटा!

तश्तरी खाली हो जाने पर साल्मेन ने ज़ोर की डकार ली और वाख़्तीगुल से बोला:

"अब हमें अहाते में ले चलो। देखेंगे कि वहां क्या कुछ छिपा है। मेरा कुल-नाश हो जाये, अगर मैं तुम्हारे पास घोड़ी की पूछ भी रह जाने दूं। तुम मेरी आंखों में धूल नहीं झोंक पाओगे, यह तिकड़म नहीं चलेगी... सब कुछ ले जाऊंगा, कुछ भी नहीं छोड़ूंगा। हां, चलो तो, जल्दी से, जब तक ज़िंदा हो!

भूख के मारे वाख़्तीगुल की अन्तड़ियां ऐंठी जा रही थीं।

"चाहते हो तो ख़ुद जाकर ढूंढ लो, मिल जाये तो ले जाओ," अपमान के कारण तथा और अधिक बुराई की आशा करते हुए उसने दांत भींचकर कहा। "घूनी आंखें और लम्बी-चौड़ी बातें करके तुम मुझे नहीं डरा पाओगे..."

साल्मेन ने झपट कर वाख़्तीगुल पर दो बार कोड़ा बरसाया... वाख़्तीगुल ने तो अपने बचाव के लिए कुछ भी नहीं किया। वह टकटकी बांधकर बाई को देखता रहा और उनींदेपन के कारण सूजी हुई उसकी आंखों में आंसू झलक उठे। बाई आपे से बाहर होकर बहुत गन्दी गालियां बकने लगा।

वाख़्तीगुल को सबसे अधिक डर इसी बात का था, पत्नी और बच्चों के सामने अपनी ऐसी हेठी हो जाने का।

हाथ ऊपर उठाकर हातशा ज़ोर से चिल्ला उठी:

"ख़ुदा तुझे गारत करे!"

संक्षिप्त चीख़ के साथ सेइत चिल्ला उठा:

"कुत्ते का पिल्ला!" और वह साल्मेन की छाती पर झपटा।

वाई ने लड़के को एक ओर को धक्का दे दिया। तब वाख़्तीगुल अपने को काबू में न रख सका और उसने वाई का गला पकड़ लिया।

बडा भयानक लग रहा था इस समय वाख़्तीगुल, पाच लोगों से भी ज्यादा ताकत आ गई थी उसमें। जवान अपने मालिक साल्मेन को फ़ौरन ही नही छुड़ा पाये, वाई के होश जल्द ही ठिकाने नही आये। जैसे-तैसे सांस लेता हुआ और गुस्से से टूटती आवाज मे वाई फिर चिल्ला उठा:

"ज़रूर जेल की हवा खाओगे तुम! अरे कमीने... तुम्हे सड़ाऊंगा, जमीन में गाड़ूंगा, साइबेरिया में भिजवाऊंगा! अगर ऐसा न करूं तो मेरा नाम बदल देना..."

मगर वाख़्तीगुल अब न तो गालियां ही सुन रहा था और न धमकियां ही। उसे तो बुरी तरह पीटा जा रहा था। उसकी आंखों के सामने लपटों के लहरियें-से उभरते, लहराते और घुल-मिलकर एक हो जाते। फिर वे भी बुझ गये। वह मानो धम से किसी तंग और अंधेरे कुएं में जा गिरा, कुएं की दीवारों से उसका सिर, पीठ और पेट टकराता रहा और वह किसी तरह भी उसके तल तक नही पहुंच पाया।

जबडे के भयानक दर्द के कारण घडी भर को उसे होश आया। उसके ममूढों को तो कोई मानो बर्मे से टुकड़े-टुकडे किये दे रहा था। इसके बाद फिर से अधेरा छा गया और आखिर वह कडाही की तरह दहकते कुएं के तल में जा गिरा।

इसके बाद बाल्नीगुल को किसी चीज का होश नही रहा।

४

बाल्तीगुल काफी देर बाद होश मे आया और रक्तिम धुधलके मे से उसने बड़ी मुश्किल से हातशा को पहचाना। एक ही रात मे उसका चेहरा बुरी तरह उतर गया था, वह बुढा गई थी। सिसकियों से उसका गला रंधा जाता था, उसकी आवाज खरखरी और बैठी-बैठी थी। बाल्तीगुल अपनी बीवी की आवाज नही पहचान पाया।

खेमे का प्रवेश-पट फाड़ दिया गया था और एक चौड़े सूराख मे से हल्की और उदास-उदास रोशनी छन रही थी। जोर से बरसते पानी की धारे चमक रही थी और दहलीज पर घोड़ों के अयालों से मिलता-जुलता सफेद फेन हिल-डुल रहा था।

बाल्तीगुल कराह उठा। काश कि उसे यह रोशनी न देखनी पड़ती—यह दुर्भाग्य की रोशनी।

चूल्हा ठडा हो चुका था और खाल के भारी कोट के नीचे बाल्तीगुल ठंड से ठिठुर रहा था। उसके रोम-रोम में

पीड़ा हो रही थी और उसके जबडे को तो मानो सड़सी से पकड़ कर खीचा जा रहा था। पति की पीडा को अनुभव करती और धीरे-धीरे मिसकती हुई हातशा उसके चेहरे पर जमा हुआ खून पोछ रही थी। उसके चेहरे में तो इन्सानी चेहरेवाली कोई बात ही बाकी नही रह गई थी। वह तो बैंगनी रंग का टेढा-मेढा पिंड-सा बनकर रह गया था। आखें ऐसे मूजी हुई थी कि बयान से बाहर, गाल पर बड़ा-सा चीर था और उससे अभी तक खून बह रहा था। कोट के कमाये हुए चमड़े पर जमती हुई रक्त की ये बूदें चमकते हुए काले मनकों के समान लग रही थी।

वाम्तीगुल ने कराहते हुए बड़ी मुश्किल से सिर घुमाया। उसकी आखे किसी को खोज रही थी।

"वे यहा नही है ..चले गये सब शैतान..." हातशा ने रुंधे कण्ठ से कहा।

"सेइत..." वाम्तीगुल ने उच्छ्वास छोड़ते हुए कहा। "वह यहीं है, शाबाश है उसे!"

पिता की पिटाई करने के बाद गुडे बेटे पर झपटे। खुद सात्मेन ने लड़के से यह उगलवाने की कोशिश की कि मांस कहा है। उसे मार डालने की धमकी दी। मगर सेइत ने तो जबान ही नहीं खोली। बाई गुस्से मे लाल-पीला होता रहा और लड़का पगले की तरह हसता रहा।

आसू पीते हुए हातशा ने बताया—लाल दाढीवाले ने मशाल जलाई और कुत्ते की भांति मांस की खोज करने लगा। उसी ने मास खोजा। हफ्ते भर के लिए जो थोड़ा-

सा मास छानी की कड़ियों के साथ टागा हुआ था और जो पत्थर के नीचे गुप्त जगह पर छिपाया गया था, उसने सभी खोज लिया। रखवालों ने खाल के रंग से घोड़ी को पहचान लिया। साल्मेन ने सारा मांस और इसके अलावा हमारा घोड़ा और गाय भी ले चलने का हुक्म दिया। घोड़ा इसलिए कि बाई के घोड़ों के झुण्ड मे कमी न हो, गाय अपमान का बदला लेने की ख़ातिर और मांस इसलिए कि वह चोरी का था और चोर के पास नही छोड़ा जा सकता था।

जाने से पहले लाल दाढीवाला और दो अन्य जवान मशाल लिये हुए वाख़्तीगुल के पास आये। वे एक-दूसरे की नज़रों में झाकते और कान लगाकर कुछ सुनते रहे।

साल्मेन आया तो लाल दाढीवाले ने उसे तसल्ली देते हुए कहा :

"ज़िन्दा है..."

"इस कम्बख़्त की किस्मत मे ख़ेमे में नही, जेल मे सड़सड कर मरना लिखा है। मेरा भाई काज़ी होगा... तुम सब होगे मेरे गवाह... शिकायत दर्ज करेंगे, मुहर लगायेंगे... इस चोर को निर्वासित किया जायेगा, इसके पैरों मे बेड़िया डालकर इसे साइबेरिया भेज दिया जायेगा। याद रखना मेरे ये शब्द।"

इतना कहकर वे चलते बने।

वाख़्तीगुल ने बच्चों की ओर देखा। इन भोले-भालों को फिर से फ़ाके करने होंगे। अहाते की बूढ़ी कुतिया के पिल्लों की तरह भूखों मरना होगा।

"क्या कुछ भी नही बचा बच्चों के लिए?" बाख़्तीगुल ने पूछा।

"कुछ भी नही...जरा-सा टुकड़ा भी नही," हातशा ने सिसकते हुए कहा। "सभी कुछ समेट ले गये। इतना ही नही, शैतान के बच्चे ख़ेमे की भी बुरी हालत कर गये... ढांचे तक तोड़-फोड़ गये... उसी सूअर ने ऐसा करने का हुक्म दिया था। ख़ुदा करे कि उसकी हड्डियों को कुत्ते नोच-नोच खायें!.."

बाख़्तीगुल ने दात किटकिटाये और फिर से बेहोश हो गया। आधे दिन तक वह बेहोशी मे जोर से बड़बड़ाता, ख़ुदा को कोसता और अज्ञात काज़ियो को भला-बुरा कहते हुए यह पूछता रहा:

"ए बताओ तो... अब कहो तो... किसने किसकी चोरी की है?"

बाख़्तीगुल कई दिनों तक हिले-डुले बिना लेटा रहा, सोचता और माथापच्ची करता रहा—अब क्या किया जाये?

मैं अकेला हूं और किसी से कोई मदद मिलने की आशा नही। कोजीबाकों के सामने मुझ अकेले की क्या दाल गलेगी? उनके गांव मे क्या न्याय की आशा की जा सकती है? वे तो सीधे मुह बात भी नहीं करेंगे। बड़े ही घमंडी है ये ज़ालिम! दूसरे तो इतने डरे-सहमे है कि ज़बान खोलने की हिम्मत नही करते! मुसीबत मे आदमी किसका सहारा लेता है? रिश्तेदारों का। मगर वे हैं कहां? कोई

बीसेक ही खेमे हैं ग़रीब सार वंश के। वे भी जहां-तहां बिखरे हुए हैं उन्हें इकट्ठे करना सम्भव नहीं। वे धनी वंशों के साथ जहां-तहां खानाबदोशी करते हैं, उनकी टहल-सेवा में लगे रहते हैं और गरीबी तथा दुख-मुसीबतों से उलझा करते हैं। किससे ये अपनी बात कह सकते हैं? कोई कान नहीं देगा उनकी बातों पर। उनमें से एक भी तो ऐसा नहीं जिसके पास चप्पा भर भी अपनी जमीन हो!

फिर भी सार वंश के लोगों ने जिस स्थिति के सामने घुटने टेक दिये थे, बाय़्तीगुल उसके सामने झुकने को तैयार नहीं था। शायद वह दूसरों की तुलना में अधिक साहसी, अधिक हठी था और इसी लिए उसकी जिन्दगी दूसरों से बुरी थी, मुश्किल थी। उसका भाई तेक्तीगुल तो मेमना था और इसी लिए भेड़िये उसे हड़प गये थे। मगर इस छोटे-से हठीले सेइत ने बाप का दिल और बाप का मिज़ाज पाया है। अगर किस्मत साथ देती, तो बाय़्तीगुल इन्सान बन जाता, ईमानदारी की जिन्दगी बिता सकता, अपने बच्चों को भरपेट खिला-पिला सकता! भगवान की दया से अक़्ल की भी कुछ कमी नहीं है बाय़्तीगुल में, बातचीत करने का ढंग भी आता है। बहुत कुछ कर सकता था बाय़्तीगुल... मगर किस्मत साथ नहीं देती, कहीं इन्साफ ही नहीं है। खून की लाइलाज बीमारी की तरह खुदा उसे भूख और बेइज़्ज़ती का शिकार बनाता रहता है।

अब तो बात बिल्कुल ही बिगड़ गई थी अब तो वह सालेमेन की आंखों में कांटे की तरह खटकेगा। बीज बोये

है तो फल आयेंगे ही! कोज़ीवाक अपनी पूरी कोशिश करेंगे, एड़ी-चोटी का जोर लगायेंगे। उनके पीछे सत्ता का ज़ोर है, उनका घर का हाकिम और अपनी हुकूमत है। ये सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं, चोर-चोर मौसेरे भाई हैं। अगर वे एक बार मुझे रंगे हाथों पकड़ लेंगे, तो—मैंने किया या नहीं किया, सब कुछ मेरे मत्थे मढ़ देंगे और सबसे पहले तो अपनी काली करतूतें ही। चोरी करेंगे उनके अपने लोग और चोर बनेगा वाख़्तीगुल। तब मुझे जेल की सभी मुसीबतों, आतकों और अपमानों को सहन करना होगा।

सालमेन जानता था कि वाख़्तीगुल का किस चीज़ से दम ख़ुश्क किया जा सकता। वाख़्तीगुल दुनिया में सबसे अधिक तो जेल से डरता था। मुठ-भेड़ के समय वाख़्तीगुल ने कई बार अपने सामने मौत नाचती देखी थी, मगर उसे कभी झुरझुरी नहीं आई थी। पर अब वह ऐसे कांप रहा था मानो उसे ज़ोर का बुख़ार चढ़ा हो। जेल...बदबूदार और सड़ी हुई क़ब्र... वे उसे ज़िन्दा ही दफ़ना देना चाहते हैं। तेवतीगुल की किस्मत फिर भी अच्छी थी।

और फिर सालमेन, वह तो जो कहता है, करके रहता है। वह तो इस गुस्ताख़ गुलाम के साथ बहुत ही बुरी करके रहेगा ताकि दूसरों को इस से नसीहत मिले। वह उसे जेल में भेजकर ही दम लेगा।

"क्या करूं?" वाख़्तीगुल अपने से पूछता और बीवी, तथा बच्चों की भी शर्म न करते हुए फंदे में फंसे जानवर

की तरह ज़मीन पर पड़ा हताशा से छटपटाता रहता।

हातशा तो यही समझती थी कि पति फिर बेहोशी में बड़बडा रहा है और पूरी लगन से भगवान को याद करने लगती :

"हे ख़ुदा, इसे बर्दाश्त करने की ताक़त दो—इसे मरने नही देना, हे अल्लाह! .."

एक दिन तो वह बिल्कुल ही हिम्मत हार गया। हातशा को अपने पास बुलाकर ऐसी अट-शंट बकवास करने लगा जिसे पहले ज़बान पर लाते हुए उसे शर्म आती थी।

"नही बीवी... मेरी क्या बिसात है उन के सामने... मैं कर ही क्या सकता हू!.."

ऐसे शब्द सुनकर बीवी को पहली बार पति के बारे मे डर महसूस हुआ।

"क्या किसी से भी मदद नहीं ली जा सकती?"

वास्तीगुल ने कोई जवाब नही दिया, सोच मे डूब गया।

ऐसे लगा कि उसने कुछ तो सोच ही लिया है! वह फौरन यह समझ गई। इसके बाद वास्तीगुल न तो कराहा और न बड़बड़ाया। वह घावों-खरोचों से भरी हुई छाती को सहलाता हुआ चुप्पी साधे रहता।

एक हफ़्ता गुज़रा तो वास्तीगुल ने बिस्तर छोड़ दिया। उसका रंग-ढंग देखकर हातशा समझ गई कि उसका विचार ठीक ही था। वह फिर से लम्बे सफ़र की तैयारी करने लगा।

चोर कोजीवाक उसका विश्वस्त और आजमाया हुआ घोड़ा तो अपने साथ ले गये थे, मगर वाल्तीगुल के पास उसके जैसा ही एक और बढ़िया घोड़ा भी था। बड़ा जोशीला और तेज चालवाला कुम्मैत घोड़ा। उसने जरूरत पड़ने तक उसे अपने एक विश्वसनीय पड़ोसी मित्र के झुण्ड में छोड़ रखा था।

यह घोडा बहुत ही बढिया, बड़ा ही सुघड, दुबला-पतला, चौडी छाती और पतले टखनोंवाला था। असीम स्तेपी में रहनेवाले गरीब से गरीब चरवाहे के पास भी दो-तीन घोडे हो सकते थे, किन्तु ऐसा घोड़ा तो हर बाई के पास भी नही था। शायद हल्केदार ही ऐसे घोड़े पर सवारी करता था।

अब कुम्मैत पर जीन कसने की बारी आ गई थी। वाल्तीगुल ने सुबह-सवेरे ही पुराने किस्म की बन्दूक मे छर्रे भरे और जबड़े के घाव पर तेल लगाकर उसे मकड़ी के जाले से ढक दिया। सेइत ने उसे घोड़े की लगाम पकड़ाई और वाल्तीगुल ने सिर हिलाकर उस से विदा ली। कुम्मैत वाल्तीगुल को जंगलों से ऊपर, बहुत ऊंचे पहाड़ों और दुर्गम स्थानों की ओर ले चला।

झाड़-झंखाड़ और कंटीली झाड़ियों को लांघते हुए घुड़सवार को काफी देर लग गई। दोपहर होने तक ही वह अगम्य झाड़-झखाड़ से निकल पाया। अब उसके सामने वनस्पतिहीन, विराट और आसमान की ओर जाती हुई खून की तरह लाल चट्टानें थीं।

अपने सिर के ऊपर उनको लटकी हुई देखकर आदमी बरबस झुक जाता है। उनके पास जाते ही डर लगता है। ऐसी अनुभूति होती है कि उनके ख़ामोशी के सदियों पुराने साम्राज्य में खलल डालना गुनाह है। यहां न तो इन्सान नज़र आता था और न ढोर ही। लाल चट्टानों में मनमर्ज़ी से घूमनेवाले जंगली जानवर रहते थे, पर कोई शिकारी यहा भूले-भटके ही आता था। यहां पहुंचना कठिन था, लेकिन यहा से लौटना और भी कठिन।

बास्तीगुल दबे पाव इस पथरीली विराट काया के पास पहुचा, चुपके-चुपके नीचे उतरा और छायादार कन्दरा में घोड़े को बाधा। उसने लोमड़ी की खाल की टोपी उतारी, उसे क़मीज़ के नीचे दबाया, पीठ पर पेटी के साथ बन्दूक कसी और ऊपर चढ़ने लगा। चढ़ाई में ज़ोर लगाने के कारण उसके जबडे के घाव से ख़ून की पतली-सी नमकीन धार बह कर बास्तीगुल के मुह के करीब पहुच गई। बास्तीगुल ने उसे चाट लिया।

उसने थके हुए घोडे की भांति हाफते हुए चट्टान की गजी चोटी पर चढ़ कर दम लिया।

अब उसे भूरे पत्थरोंवाला वह विस्तृत गड्ढा दिखाई दिया, जो नीचे से नज़र नही आता था। उसे मालूम था कि इस गड्ढे के पीछे ज़ीने के समान और हरियालीहीन वह ढाल है, जहा ढेरों-ढेर पहाड़ी बकरे रहते हैं। उन पर पत्थरों में गायब होनेवाली अनगिनत पगडंडियों का जाल-सा बिछा हुआ है।

वाख़्तीगुल ने चट्टानी लहरों को बहुत ध्यान से देखा। गड्ढे के उस पार, उस वीरान ऊंचाई पर कोई नहीं था। सभी कुछ निर्जीव था, न कहीं कोई धड़कन थी, न गति। सभी ग्रोर सुनसान था, नेत्रहीन ग्रौर मूक... कितनी बार ही वाख़्तीगुल यहां बेकार भटकता रहा था, रेंग-रेंगकर यहां पहुंचा था ग्रौर नुकीले पत्थरों ने उसके शरीर को खरोंचा था। तब उसे इसी बात की ख़ुशी हुई थी कि वहां से जीता-जागता ग्रौर सही-सलामत लौट ग्राया था। मगर इस बार उसे ख़ाली हाथ नहीं लौटना था। इस बार वह पत्थर से भी ज्यादा दृढ़ता का सबूत देगा।

इर्दगिर्द के पत्थरों के समान ही ग्राकाश भी भूरा-भूरा था उदास था। पैवन्दों लगा भूरा चोगा पहने, रक्तहीन पीले-पीले चेहरेवाला, दुबला-पतला ग्रौर हड़ीला वाख़्तीगुल ख़ुद भी पत्थर जैसा प्रतीत हो रहा था। पीठ पर से बन्दूक उतार कर वह छिपकली की भांति दबे-दबे, चोरी चोरी ग्रौर ग्राहट किये बिना गड्ढे के किनारे-किनारे चलने लगा। पर्वतो, पर्वतो! इस बेचारे को थोड़ी भीख ही दे दो! ..

वाख़्तीगुल जब गड्ढे के उस पार पहुंचा तो दिन ढलने लगा था। ग्रब उसे ग्रपने सामने पहाड़ी बकरों की पगडंडियां दिखाई दीं।

ऐसा भी होता है कि किस्मत बदकिस्मत का भी साथ दे देती है। वाख़्तीगुल के एकदम नीचे पारदर्शी सफ़ेद धुंध में तीन पहाड़ी बकरे दिखाई दिये—सबरीला

सीगोंवाला नर और छोटी-छोटी पूछों तथा पैने खुरोंवाली दो मादाये। वे जिधर से आये थे, उसी तरफ को मुंह करके अभी अभी रुके थे। चौकन्ने, सजग और पलक झपकते मे छलागें मारते हुए वे आंखों से ओझल होने को तैयार थे। उनके गठे हुए झबरीले शरीरो मे स्प्रिग की सी लोच थी, उन्हे तो मानो पंख लगे हुए थे।

"खुदा मदद करो .." उसने बन्दूक को सीधा करते और निशाना साधते हुए फुसफुसाकर कहा।

उसने नर का निशाना साधा, मगर बहुत ही हड़बड़ी मे—उसके हाथ कांप रहे थे, बन्दूक की नली हिल-डुल रही थी और बकरे ने उसे देख लिया। बुजदिल का अपना ही एक उसूल होता है—वह दूसरी बार मुड़कर कभी नही देखता। जैसे ही उसने यह महसूस किया कि कुछ गड़बड़-घुटाला है, वैसे ही वह एक ओर को कूदा और लम्बी-लम्बी छलागें मारता फुर्ती और तेजी से जीने जैसी ढाल से नीचे भाग चला। मादाये उसी क्षण उससे आगे निकल गई और पिस्सू की भाति छलागें मारती आगे-आगे दौड़ने लगी।

वाल्तीगुल के हाथ अब मजबूत हो गये थे, वह लगातार नर की दिशा मे ही बन्दूक को घुमाता जाता था। जब वह मादाओं को अपने पास बुलाते हुए एक ऊंची चट्टान पर पहुंचा तो बन्दूक से लपट निकली और जोर का धमाका हुआ। धुएं का नीला-सा बादल पत्थरो के बीच धीरे-धीरे फैल गया और धुएं मे से वाल्तीगुल तेजी से भागे जाते बकरे को सिर के बल लोट-पोट होकर गिरते देखा।

वाख़्तीगुल को अपनी सुध-बुध न रही और इस आशंका से कि बकरा उठेगा और भाग जायेगा वह तेज़ी से नीचे की ओर भाग चला। एक बगल पड़ा हुआ बकरा बुरी तरह तड़प रहा था। वाख़्तीगुल ने छुरी निकाल कर उसकी गर्दन पर वार किया। सलेटी पत्थरों पर सुर्ख़ ख़ून फैल गया। बकरा छटपटाया और उसने दम तोड़ दिया। हांफता हुआ वाख़्तीगुल भी उसके करीब ही ढह पड़ा।

इसके बाद उसने बकरे की खाल उतारी, अंतड़ियां निकालीं, धड़ को दो हिस्सों में काटा और मांस को खाल में लपेटा। वह दर्रे के रास्ते से घोड़े को लाया, मुश्किल से उस पर मांस लादा और उसे बालों के फंदे से बांधा।

घोड़े पर सवार वाख़्तीगुल ने फिर से झाड़-झंखाड़ को लांघते हुए ही थोड़ा आराम किया। मगर वह घर की ओर नहीं गया...

शाम होते-होते वाख़्तीगुल छायादार और तेज़ हवाओं से रक्षित घाटी में पहुंच गया। यहां नदी के तट पर एक धनी गांव बसा हुआ था। यह पड़ोस के चेल्कार्स्क हल्के के हल्केदार जारासबाई का गांव था।

जारासबाई विख्यात व्यक्ति था, सो भी न केवल अपने हल्के में और न केवल अपने ओहदे, अपने पद के कारण। सारे इलाक़े में ही उससे ज़्यादा मशहूर कोई हाकिम, मिर्ज़ा, हाजी या बाई नहीं था। स्वामी, व्यापारी और योद्धा के रूप में भी उसकी बड़ी प्रशंसा की जाती, सच तो यह है कि न तो धन-दौलत, न मान-...

न समझ-बूझ की दृष्टि से ही कोई उसकी बराबरी कर सकता था।

इस आदमी से हर तरह की आशा की जा सकती थी—भलाई की भी, बुराई की भी, नेकी की भी और बदी की भी, सो भी ढेरों-ढेर!

"देखता हूं किस्मत आज़माकर..." गांव के पास पहुंचते हुए वाख़्तीगुल ने सोचा। "तंग आ गया हूं अकेले ही सब कुछ सहते-सहते..."

लगता था कि जारासबाई इसी नदी के तट पर जाड़ा बिताने जा रहा था। गांव के बहुत से निवासी पतझार की ठंड से बचने के लिये मिट्टी के झोंपडों मे बस भी चुके थे। शाम के झुटपुटे में सभी लोग घरों से बाहर रोशनी मे निकल आये थे।

सबसे बड़े आंगन के फाटक पर वाख़्तीगुल को एक लम्बा-तड़ंगा और मोटा-तगड़ा आदमी दिखाई दिया, महंगी फर की टोपी और अस्त्राख़ानी फ़र का बर्फ़-सा सफ़ेद कोट पहने हुए। उसका चेहरा एकदम सुर्ख़ था, चमकता हुआ, बहुत ही गम्भीर, बड़ा ही रोबीला। यह जारासबाई था! वैसे तो वह वाख़्तीगुल का हमउम्र ही था, मगर क्या ठाट थे उसके, जरा कोई पास तो फटके... बहुत-से लोग उसे घेरे हुए थे—दो प्रतिष्ठित बुजुर्ग, सतरह वर्ष का उसका सबसे बड़ा, हृष्ट-पुष्ट बेटा और बहुत से जवान और बूढ़े टुकड़खोर, जो मटमैले चूहों की तरह आटे की इस सफ़ेद बोरी को घेरे हुए थे।

बाख़्तीगुल ने बड़े अदब से सलाम किया। पहाडी बकरे के टेढ़े सींगों पर नजर डाल कर जारासबाई ने सिर हिला दिया। श्रीगणेश तो कुछ बुरा नही हुआ था।

फाटक में से तंग मुह की गागर उठाये हुए बाई की पहली बीवी सामने आई, उभरा-उभरा जोबन और सजा-संवरा हुआ चेहरा। उसने भी ख़ून से लथपथ टेढ़े-मेढ़े सींगोवाले सुन्दर पहाड़ी बकरे में दिलचस्पी जाहिर की और प्रशंसा से च-च.. करते हुए धीरे-धीरे घोड़े के गिर्द चक्कर लगाया। कुछ अन्य लोगों ने भी जिज्ञासावश ऐसा ही किया।

बाख़्तीगुल ने बाई की बीवी को भी आदर से नमस्कार किया।

"लगता है कि यह तुच्छ-सी चीज़ आपको पसन्द है! आज सुबह आपके गाव की ओर आते हुए मैंने सोचा कि शायद बहुत अर्से से आपने जंगली शिकार नही देखा होगा, पहाड़ी बकरे का मांस नही चखा होगा... बस, मैंने घोड़े को पहाड़ों की ओर मोड़ दिया... कोई खास अच्छा शिकार तो हाथ नही लगा... मगर आपको नापसन्द न हो तो ले लीजिये..."

बाई की बीवी ने छिपी-छिपी नजर से पति की ओर देखा मानो उसकी इजाजत चाहती हो और डरती हो कि कहीं वह इनकार न कर दे। बाख़्तीगुल मन ही मन मुस्कराया—नहीं, इनकार नहीं करेगा।

"ले लो... किया ही क्या जा सकता है..." जारासबाई ने अलसभाव से कहा और इर्दगिर्द के लोगों को आंख मारकर साथ ही यह भी जोड़ दिया—"जानवर है तो हमारे ही पहाड़ों का। अगर यह ख़ुद न देता, तो हम वैसे ही छीन लेते।"

सब ने जोर का ठहाका लगाया। बाख़्तीगुल के दिल से मानो बोझ हट गया।

एक बुज़ुर्ग ने बेकरारी से हाथ झटककर कहा:

"लड़कियां कहां हैं? ले जायें न इसे..."

बाख़्तीगुल ने अनुमान लगा लिया कि यह कैरनबाई है, बड़ा ही कंजूस-मक्खीचूस, दमड़ी-दमड़ी को दांत से पकड़नेवाला। वह जारासबाई के दिवगत बाप का बहुत ही पक्का दोस्त था। अब सारे पशुओं का वही प्रबन्धक था और जारासबाई का दायां बाजू माना जाता था।

"कदीशा, ऐसा सोचना ठीक नहीं," जल्दी-जल्दी बोलते हुए कैरनबाई ने जारासबाई की बीवी से कहा, "कि अगर एक आदमी ने कोर्जीबाक़ी की बेइज़्ज़ती की, तो क्या उसके हाथ की हर चीज बुरी, छूने के नाक़ाबिल हो गई? इसे दुत्कारना नहीं चाहिये! कोई आदमी इसे भला लगे तो यह उसे अपना आख़िरी घोड़ा तक दे सकता है। यह सच है कि वह ज़िद्दी है, मगर कहते हैं कि सूरमा ज़िद्दी तो होते ही हैं..."

बाग-बाग होते हुए बाख़्तीगुल ने उसे बहुत झुक कर सलाम किया और बोला:

"शुक्रिया, बड़े मियां। अब मैं क्या कहूं! आपने मेरी बात ज्यादा अच्छी तरह से कह दी है। बेशक मैं धुन का पक्का हूं, मगर किस्मत ही साथ नहीं देती। इसीलिये मिर्ज़ा के सामने अपने मन का भार हल्का करने आया हूं। पर आप की अक़्लमदी के सामने मैं चुप रहा हूं। आप तो मुझे बहुत ही अच्छी तरह समझते-पहचानते हैं। जैसा आप चाहेंगे, वैसा ही होगा!"

हल्केदार का बेटा दो नौकरानियों को आवाज देकर बुला लाया। उन्होंने घोड़े पर से बकरे को उतारा और अहाते की ओर ले चली। बाई के शैतान बेटे ने बकरे के सिर को अपने पेट के साथ सटाया और खिलवाड़ करते हुए इन नौकरानियो की पीठों में बकरे के सींग चुभोने लगा।

जारासबाई इस तमाशे को देखता रहा और बाख़्तीगुल से उसने एक शब्द भी नहीं कहा। शायद वह किसी तरह से उसका अपमान नहीं करना चाहता था, मगर हल्केदार हर ऐरे-गैरे को मुह भी तो नहीं लगा सकता था। बाख़्तीगुल न तो ख़ुद ही कोई बड़ा आदमी था और न कोई बहुत बढ़िया तोहफा ही लाया था!

मगर दूसरा बुजुर्ग बाख़्तीगुल की ओर सहानुभूति से देख रहा था। यह गारमेन था, इस इलाके का एक बहुत ही पुराना क़ाज़ी। काज़ियो के चुनाव के समय जारासबाई उसके अनुभव और मुख्यतः उसके यार-दोस्तों के बड़े दायरे को ध्यान में रखते हुए हमेशा उसका पक्ष लेता था।

जारासबाई और गारमेन बराबर की चोट थे।

"बेचारा जवान..." सारसेन ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा। "नेक ख़्याल तो आधी कामयाबी होता है और मुझे लगता है कि तुम्हारे बहुत-से नेक इरादे हैं। पहले भी तो कई बार ऐसा हुआ है कि दुख-मुसीबतों के मारे और जिन्दगी के कड़ुवे घूंट पीनेवाले कई जवान परेशान होकर अपने गांव को छोड़कर भागे हैं। कहीं तुमने भी तो ऐसा ही नहीं सोच लिया?"

"बड़े मियां, बात तो कुछ ऐसी ही है," बाख़्तीगुल ने कनखियों से हल्क़ेदार की ओर देखते हुए जवाब दिया। "सोचा तो मैंने बहुत कुछ है, काफी कठिन भी...मगर आपकी नेकी का बदला चुकाने में कोई कसर नहीं छोड़ूंगा, अपनी पूरी जान लड़ा दूंगा।"

हल्क़ेदार ने त्योरी चढ़ाई। आख़िर उसने बाख़्तीगुल से कहा:

"जो कुछ इस वक़्त कह रहे हो वह तो सच ही लगता है। देखेंगे खाने की मेज पर क्या कहोगे। जिद्दी, चलो हमारे साथ घर में..."

बाख़्तीगुल बेहद ख़ुश होता हुआ बाई के पीछे-पीछे चल दिया।

"मैंने तो यहां आते ही बहुत कुछ कह डाला, मियाँ। मन पर बहुत बोझ जो था!"

"अच्छा किया... शाबाश," बाई के मूड को देखते हुए ख़ुशामदियों ने जवाब दिया।

मालिक के पीछे-पीछे ठीक अपने रुतबे के मुताबिक़ ये लोग अहाते और फिर उसके घर में गये।

वाख्तीगुल को ऐसे घर मे जाने का वहुत ही कम सौभाग्य प्राप्त हुआ था, शायद एक या दो वार ही, इसलिये वह दहलीज़ पर ही ठिठक कर रह गया। वडे-से साफ़-सुथरे और गर्म कमरे में मिट्टी के तेल का लैम्प जल रहा था, सूरज की तरह लौ देता हुआ। वाई की ऊंची गद्दी पर रंग-विरंगे गद्दे विछे हुए थे। दहलीज के पास से ही लाल कालीन विछा हुआ था – उसे तो पैर से छूते हुए डर लगता था। दायी ओर को वहुत वढिया और निकल की पालिशवाला रूसी पलंग था और उसके ऊपर दीवार पर वेल-वूटोवाला और भी वढिया कालीन टगा हुआ था। वसन्त में फूले और ओस में चमकते हुए चरागाह की भांति यहां हर चीज़ सुन्दर, चमक-दमकवाली और मनमोहक थी।

चरवाहे के धुए से काले और ठंडे तथा फटे-पुराने खेमे मे रहनेवाले वाख़्तीगुल के लिये ऐसे सजे-सजाये घर मे आना वडा ही सम्मान था। ऐसे स्वर्गिक सुख के वातावरण में रात विताना तो और भी वड़ा सौभाग्य था। जब उसे तरह तरह के पकवानो से सजी हुई मेज़ पर अन्य मेहमानों के साथ विठाया गया तो वह मानो भूल ही गया कि उसके पेट मे चूहे कूद रहे हैं, यद्यपि उसके मुह मे पानी भरा हुआ था। वह खाने पर टूट नही पड़ा। सभी समझ रहे थे कि इसके लिये उसे कैसे अपना मन मारना पड़ रहा है। शुक्र है ख़ुदा का कि वाई की वीवी ने ख़ातिरदारी में कोई कसर न रखी। वाख़्तीगुल ने उचित ढंग से मेज़बान

को धन्यवाद दिया और वह अपनी दर्द कहानी कहता रहा, सुनाता रहा... कटु और जहर बुझे शब्द अपने-आप ही उसके मुह से निकलते रहे, निकलते रहे।

सभी बड़े चाव से, बहुत दिलचस्पी से उसकी बातें सुन रहे थे मानो वह कोई खास खबर या अनोखी घटना सुना रहा हो। जब उसने जेल का भयानक नाम लिया तो बाई की बीवी चीखी, 'ऊई मा' कह उठी, बुजुर्गों के माथे पर बल पड़ गये और उन्होंने दुखी होते हुए सिर हिलाये। काजी सारसेन ने अपनी दाढ़ी थाम ली। स्तेपी में रहनेवाले एक दूसरे के लिये मौत की कामना कर सकते हैं, मगर जेल की नहीं...

बास्तीगुल मन ही मन हैरान होता हुआ सोच रहा था–यह क्या मामला है कि बाइयों को उसपर दया आ रही है, वे बेइसाफी को समझ रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं! यह घर, यह दावत, उनकी ऐसी चिन्ता, यह सब कुछ कहीं सपना तो नहीं है?

"मैं फटेहाल हू, न कोई संगी-साथी है, न कोई मददगार..." बास्तीगुल कहता रहा, "झुण्ड से बिछड़ जानेवाले बछेरे की सी हालत है मेरी... एक ही चाह है मेरी–किसी ताकतवर के साथ चिपक जाऊ, कहीं कोई खूटा मिल जाये मुझे। इसके लिये अपनी जान तक देने को, सब कुछ करने को तैयार हूं मैं।"

बाई की बीवी और जेठे बेटे ने जो घर का लाड़ला था बुजुर्गों का इन्तजार किये बिना ही खुले तौर पर कोज़ोबायों

को भला-बुरा कहना शुरू कर दिया। बाई की बीवी और बेटा इस जाने-माने चरवाहे को एकटक देख रहे थे। ऐसे नौकर और मित्र पर किसी को भी गर्व हो सकता है।

काजी सारसेन ने भी मेजबान के बोलने से पहले ही कहा :

"ख़ैर नौजवान, देखेंगे कि तुम्हारे मुंह में क्या है और बगल में क्या! रोना-धोना बन्द करो और हमारे मालिक का दामन थाम लो। कसकर थामे रहना इसे! जीवन में भला-बुरा और ऊंच-नीच देखे हुए तथा तुम जैसे चुस्त और फुर्तीले, शैतान और भगवान से न डरनेवाले लोगों की उसे बड़ी जरूरत भी है... अगर दिल लगाकर ख़ूब मेहनत से काम करोगे तो मालिक का छोटा भाई और उसके बेटे का चाचा, घर का अपना ही आदमी बन जाओगे। तब तुम्हारा कोई बाल भी बांका नहीं कर पायेगा। उसकी छत्र-छाया में न तो कोई अदालत और न कोई सत्ता ही तुम्हारा कुछ बिगाड़ सकेगी। ख़ुद गोरा ज़ार भी तुम्हें नहीं पा सकेगा, न जिन्दा न मुर्दा! ख़ुदा ने चाहा तो आज नहीं तो कल अपने दुश्मनों से हिसाब चुका लोगे, उन्हें उनकी काली करतूतों की याद दिलाओगे, उन्हें अपनी ताक़त दिखा पाओगे।"

याल्लीगुल सुन रहा था, उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। आख़िर इतनी मेहरबानी किसलिये? यह प्रतिष्ठित बुज़ुर्ग क़ाज़ी किस बात का संकेत कर रहा है? "घर का आदमी हो जाओगे... आज नहीं तो कल..."

वाल्लीगुल को मालूम था कि बहुत अर्से से कोज़ीबाकों और जारासबाई की आपस मे लगती चली आ रही है। वे इस इलाक़े के दो छोर, दो तट और दो पर्वत थे। ऐसे ही तो वाल्लीगुल यहा नहीं भागा आया था। जारासबाई मुझ बदक़िस्मत, मुझ गरीब भगोड़े का भाई बनेगा? मामला ऐसा रुख़ ले लेगा, उसने ऐसी आशा नही की थी। उसने जो चाहा था, किस्मत उससे कहीं ज्यादा मेहरबान साबित हो रही थी।

वाल्लीगुल तो जेल के डर से भागकर यहां आया था और अपने रक्षक का दास बनने को तैयार था। पर उसकी ओर तो इस तरह हाथ बढाया गया मानो स्तेपी में उसके लिये इज्जत भी हो, इन्साफ़ भी हो!

मगर जारासबाई ने अपना ख्याल ज़ाहिर करने की जल्दी नहीं की। वह पहले की तरह ही दूसरों की बातें मानो उपेक्षापूर्वक सुनता रहा। उसके गर्वीले और उपहासपूर्ण चेहरे से यह समझ पाना कठिन था कि उसका क्या विचार है। *इतना भी अच्छा है कि वह सुनता जा रहा है, टोकता नहीं है... अगर मुझ ग़रीब के सब्र की परीक्षा लेना चाहता है, तो भी ठीक है। हो सकता है कि असमंजस मे हो? मुमकिन है कि सुनता रहे, सुनता रहे और फिर मुंह फेर ले। न अपनाये, न इनकार करे...*

उस शाम को वाल्लीगुल यह न जान सका कि बाई का क्या विचार है। बाई हंसता, मज़ाक़ करता, मेहमानों और टुकड़खोरों से विदा लेकर सोने चल दिया। जाते-जाते उसने

वाख्तीगुल की ओर उसी तरह जरा सिर हिला दिया, जैसा कि उसने मुलाकात होने पर किया था। सभी खुश-खुश मेज पर से उठे—बाई खुश था, बड़े रंग में था, उसका मूड बहुत अच्छा था।

तड़के से ही बाई के अहाते में फरियादी आने लगे। उनका तांता-सा बंधा रहा। वाख्तीगुल ने अपने कुम्मैत घोड़े पर जीन कसा और यह जाहिर करते हुए एक ओर को खड़ा हो गया कि बाई जैसा कहेगा वह वैसा ही करेगा—जाने को भी तैयार और रुकने को भी। नाश्ते के बाद बाई बाहर आया। "थोड़ी उम्मीद ही बधा दे..." वाख्तीगुल की नजर यह दुआ मांग रही थी। जारासबाई उसके पास से निकल गया, उसने उसकी ओर आंख उठाकर देखा भी नहीं। मगर वाख्तीगुल ने दूसरों के जाने तक इन्तजार किया और फिर से नजर के सामने आया।

"क्या चाहते हो तुम, भले मानस?" थकान से हांफते हुए बाई ने पूछा।

वाख्तीगुल तनकर खड़ा हुआ और उसके नजदीक आकर बोला:

"क़सम खाकर कहता हूं कि जिन्दगी भर तुम्हारी खिदमत करूंगा। जहां मनमाने भेज देना। मनमाना हुक्म देना। तुम्हारा छोटा भाई और तुम्हारे बेटे का चाचा बनकर रहूंगा... बुजुर्ग सारसेन ने क्या ऐसा ही नहीं कहा था?"

"इसकी काफ़ी चर्चा हो चुकी है," ने रुखाई से जवाब दिया। "तुम्हारी ..

रखूंगा। मगर... कुछ इन्तजार करना होगा, अफवाहों और शोर-शराबे के खत्म होने तक। छोटी-मोटी बातों को लेकर मैं इस समय कोजीबाको से उलझना नही चाहता। वक्त आने पर मै तुम्हें खुद बुलवा भेजूंगा, चैन से सोने नही दूगा। तब देखेंगे कि कैसे तुम अपनी कसम निभाते हो... फिलहाल इतना ही कहूंगा कि तुम हम से कटे-कटे न रहना, अवसर आते रहा करो। मेरे लोगों को तुम पसन्द आये हो, घरेलू काम-काज मे उनकी मदद करना, वे तुम्हारे लिये कोई न कोई काम ढूढ लिया करेंगे। बाद में मैं तुम्हें कोई ढग का काम दे दूगा। अच्छा, अब जाओ।"

बास्तीगुल की खुशी का कोई ठिकाना न रहा, उसे तो आभार प्रकट करने के लिये शब्द तक न मिले।

"प्यारे... मेहरबान हल्केदार... तुम तो मेरे लिये बाप से भी बढकर हो. . सोचता था... मुह फेर लोगे... बढ़-चढ कर बातें करने के लिये माफी चाहता हू," – उसने घोड़े की लगाम पकड़कर खींची। घोड़े ने शान से सिर झटका। "तुम्हारे प्यार, तुम्हारे इस बर्ताव के लिये बड़ा शुक्रगुजार हूं .. अगर मैं इसका बदला न चुकाऊं, तो खुदा मुझे कभी माफ न करे... इस घोड़े पर तुम्हारे बेटे जागाज़ी को बैठाना चाहता हूं! जब मुझे तुमने अपना ही मान लिया, तो फिर क्या बात है, ले लें यह घोड़ा, करे इसपर सवारी..."

बाई चुप रहा, न उसने स्वीकार किया, न इनकार, मगर उसके चेहरे पर खुशी झलक उठी। बास्तीगुल नमस्कार

घर की ओर गया और उसने जागाजी को ज़ोर से पुकारा। घोड़ा बड़ी तेज़ चालवाला था, दुर्लभ था। इसीलिये उसे उपहार में देते हुए बड़ी ख़ुशी हो रही थी।

बाप की तरह बाई के बेटे ने भी न तो इनकार किया और न धन्यवाद ही दिया। मगर चेहरे से जाहिर था कि लड़का बहुत ख़ुश है। बेशक वह अभी किशोर था, उसकी खेलने-खाने की उम्र थी, वह अक़्ल का कच्चा था, मगर घोड़ों की उसे ख़ूब समझ थी।

बाई की बीवी ने भी बाय्तीगुल को ख़ाली हाथ नहीं जाने दिया। उसने घर के बने लहसुनवाले मांसेज और बछेरे के कुछ बड़े-बड़े और लज़ीज़ टुकड़े उसके साथ बांध दिये। बाय्तीगुल स्नेह-स्निग्ध और हर्ष-विभोर होता हुआ घर लौटा।

दो दिन बाद जांगाज़ी उसके ख़ेमे में आया, कुछ देर बैठा, बातचीत करता रहा और बाप की तरफ़ से सलाम कहा। उसके बाद ख़ेमे से बाहर निकला, कुम्मैत घोड़े को खोला, उछलकर उस पर सवार हुआ और अपने गांव की ओर चल दिया। तेज़ घोड़ा उसके नीचे ख़ूब जंच रहा था, बाज़ की तरह उड़ा जा रहा था।

५

बाय्तीगुल के लिये मज़ेदार-सा और सुख-चैन का मनभाया-सा जीवन आरम्भ हुआ।

पहले जाडे मे जारासबाई ने उसे कुछ दूर-दूर ही रखा, अपने दफ़्तरी काम-काज के नजदीक नही आने दिया। यह तो जाहिर ही है कि बाक़ीगुल हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठा रहता था। लेकिन अब उसे भूख और अपमान का जीवन नही बिताना पड़ता था। उसकी पुरानी कुख्याति धीरे-धीरे मिटने और अतीत की कहानी बनने लगी।

जारासबाई के यहा जब बडी बैठकें होतीं तो उनमें वंशो के मुखिया और सरदार "प्यादों मे घुड़सवार" भाग लेने आते। जारासबाई उनके सामने जब-तब अपने नये नौकर की प्रशसा करता, उसके दुख-दर्दों, मुसीबतों और सब्र का बखान करता। सारसेन और कैरनबाई भी यही राग अलापते हुए नेक काम के लिये हल्केदार की तारीफ़ करते। खुदा करे कि रात के इस उठाईगीरे को नजर न लग जाये, जिसे जारासबाई ने ईमानदार आदमी बना दिया है, जिसके गुस्से से भरे और कठोर दिल मे नेकी और भलाई भर गई है।

"सही रास्ते पर चल रहा है... इन्सान बनता जाता है..."

घोड़ों की तरह मोटे-ताजे और अपने वंशों के घमंडी मुखिया इस भगोड़े चरवाहे को ध्यान से देखते। बाज़-बाज़ लोग उसकी पीठ थपथपाते, उससे बातचीत करते। गहरी समझ-बूझ रखनेवाले यह समझ जाते कि इस जवान पर जारासबाई खास आशाएं लगाए हुए है।

निठल्लेपन के कारण बाक़ीगुल परेशान हो जाता था।

आराम का जीवन उसके लिये भारी मुसीबत था। चील को आसमान में ऊंची उड़ान भरे बिना और घोड़े को दौड़े बिना चैन नहीं मिलता। उसने अपना पूरा जोर लगाकर जारासबाई की सेवा करने की कोशिश की। बेशक लगता तो यही था कि घोड़ों को चराने के सिवा वह जीवन में कुछ भी नहीं जानता, फिर भी वह जो भी काम हाथ में लेता, उसे खूब बढ़िया ढंग से पूरा करता। मगर गांव का काम-काज – यह भी कोई काम होता है? इसके लिये भला उसकी ताकत की जरूरत थी? उसे तो औरतें कर सकती हैं।

गर्मी में कुत्ते की इधर-उधर डोलनेवाली जबान की तरह बाल्तीगुल सुबह से शाम तक गांव में दौड़-धूप करता और इधर-उधर दौड़ता रहता। वह किसी चीज की मरम्मत और सफाई करता, कुछ उठाकर लाता, ले जाता, कुछ हिलाता-डुलाता मानो उसे चैन से बैठना सुहाता ही न हो। काम का उसका जोश और घर-गृहस्थी में उसकी गहरी दिलचस्पी देखकर पैनी नजर रखनेवाला कैरनबाई तो बिल्कुल ही मोम हो गया। भेड़ की चर्बी के पिघलने पर जैसे उसके ऊपर भाग से आ जाते हैं, वैसे ही अब उसके गालों पर मुस्कान खिली रहती। बहुत ही प्यारा नजारा होता है किसी को काम करते पीठ दोहरी करते और पसीना बहाते हुए देखना।

"काम को यह बहुत ही फुरत-फुरत निपटा डालता है। हर फन मौला है। हिसाब-किताब में भी कुछ बुरा नहीं! दे तो जाये उसे कोई धोखा..." कैरनबाई मुखिया से कहता।

"बेचारा मुसीबत का मारा है, असहाय है। उसपर ख़ुदा की नज़र सीधी नहीं है, इसीलिये ग़रीबी का शिकार है। वरना काम-काज में ऐसा होशियार आदमी गरीब रहे?" कैरनबाई दूसरों से कहता।

घोड़ों और भेड़ों को चराने से लेकर वसन्त में बुआई और पतझर में कटाई करने तक का हर काम वास्तीगुल अच्छी तरह से जानता था। नये चरागाह ढूंढने, वक़्त पर घास सुखाने या जरूरत पड़ने पर सफेद रोटी पकाने का अथवा ऐसा कोई भी काम वास्तीगुल आसानी से और अन्य किसी भी चरवाहे, रखवाले या रसोइये से जल्दी कर डालता था।

वह नौकर से मददगार और फिर सलाहकार बन गया— सो भी अकेले बाई के घर में या बाई की बीवी के लिये ही नहीं, सभी अड़ोसियों-पड़ोसियों के लिये भी। लोग उसके पास काम-काज और घर-गृहस्थी के मामलों में सलाह लेने आते। उम्र में बहुत बड़ा न होते हुए भी वह उनके बीच सुलाह कराता, उन्हें राह दिखाता और समझाता-बुझाता। कुछ समय गुज़रने पर वह गांव भर में दूरदर्शी कहलाने लगा।

हल्कैदार धीरे-धीरे उसे अपने दफ़्तरी काम-काज में भी हाथ बंटाने की इजाजत देने लगा। एक काम, फिर दूसरा काम सौंपा... वास्तीगुल फिर से इधर-उधर घोड़ा दौड़ाने लगा, मगर चरवाहे का डंडा लिये हुए नहीं, कंधे पर सन्देशवाहक का थैला टांगे हुए। यह थैला विश्वास और

सत्ता का द्योतक था। अब तो वह वृद्ध अपने को नहीं पहचान पाता था।

वाई के काम-काज में उलझा हुआ वाम्ब्लीगुल अपना ध्यान रखना भी नहीं भूलता था। जब वह स्याही से लिखे और मुहर लगे महत्त्वपूर्ण कागजात का थैला लेकर सारे हल्के में घूमता-फिरता तो कुछ छोटे-मोटे माल भी अपने साथ ले लेता और उन्हें इच्छुक खरीदारों को बेच कर कुछ मुनाफा कमा लेता। बहुत-से लोग उसके आने और यह जानने के इन्तजार में रहते कि वह क्या लेकर आयेगा। वसन्त में वाम्ब्लीगुल ने पहले की तुलना में अपने लिये तिगुनी-चौगुनी जमीन की बोवाई कर ली। जारासवाई ने जरा भी आपत्ति नहीं की, क्योंकि कैरनवाई ने उसे बीज ले जाने की अनुमति दी थी।

साल्मेन के समान उसे यहां भी कोई वेतन नहीं मिलता था। पर इतना तो था कि जारासवाई उसकी पिटाई नहीं करता था, उसे आराम से जीने देता था। हालशा ने अगले जाड़े के लिये काफी मात्रा में साग, आटा, घी, सफेद नमक और बिलुन वाई के घर जैसी गन्धक की पीली दियासलाइयां और पक्के धागे जमा कर लिये। वह वृद्ध भी वाई के घर में कुछ न कुछ काम करती रहती, वाई की बीवी की सेवा करती और गर्मी भर में ही स्पष्टतः काफी स्वस्थ हो गई और उसकी पोशाक में भी बहुत सुधार हो गया। वाई के घर के उतारे-पुतारे उसे

खूब जचते और अपने पुराने कपड़ों से उसने बच्चों की पोशाकें बना दीं। वे अब नंगे या चिथड़ों में नहीं घूमते थे।

जाड़े में ही जारासबाई ने वाल्तीगुल से कहा था:

"बेटे को कुछ पढ़ाना-लिखाना चाहते हो? यहां ले आओ उसे।"

यह तो बहुत ही बड़ी मेहरबानी थी।

हल्केदार के गांव में एक जवान कज़ाख़ जुनूस रहता था। उसने रूसी स्कूल की पढ़ाई पूरी की थी और पढ़ा-लिखा होने के कारण ही उसे मुल्ला कहा जाता था। वह खाते-पीते लोगों के घरों के दो-तीन लड़कों को पढ़ाता था, हल्केदार का बेटा जागाज़ी भी उसी से तालीम पाता था। अपने भाग्य को सराहता हुआ वाल्तीगुल अपने बेटे सेइत को मुल्ला के पास ले गया।

"वहां जाकर पढ़े-लिखे तो ढंग का आदमी बन जायेगा," वाल्तीगुल ने बेटे से कहा और सेइत ने इन अद्भुत शब्दों को गांठ बांध लिया।

जाड़े भर सेइत रूसी ककहरे को दोहराता रहा, उसने उसे ऐसे रट लिया मानो वह दुख-मुसीबत से लोगों को उबारने वाला कोई मन्त्र-टोना हो। उसका पढ़ाई में बहुत मन लगता था और वह बहुत जल्द ही बाई के आलसी, बिगड़े हुए और मूढ़ बेटों से आगे निकल गया।

मुल्ला प्यार से सेइत से कहता:

"बड़ा होकर मुल्ला बनेगा।"

सेइत को अक्सर देर तक रातों को नींद न आती। वह कल्पना करता रहता कि कैसे बड़ा होकर मुल्ला बनेगा।

बाख़्तीगुल के बोये हुए बीज ख़ूब बढ़िया और अच्छे पौधे बनकर फूटे। चरवाहे के मन को चैन मिला। गर्मी में जारासबाई के गांव में ही आ बसा, जो अब उसके लिए अपना गांव बन गया था। सख़्त गर्मी के दिन उसने बेटे के साथ ऊंचे पहाड़ी चरागाहों पर बिताये और जी भर कर घोड़ी का फ़ेनिल सुनहरा दूध पिया।

गर्मी में खेतीबाड़ी का काम-काज कम हो गया। हल्केदार ने अब बाख़्तीगुल को पूरी तरह अपने कामों में उलझा लिया। किसी रहस्यपूर्ण दौड़-धूप में दिन पर दिन बीतने लगे। इस दौड़-धूप के पीछे जारासबाई के बड़े मामले भांपे जा सकते थे।

बाख़्तीगुल बहुत जल्द ही अपने काम की विद्या सीख गया: जिन गांवों में हल्केदार की प्रतिष्ठा थी, वहां के लोगों के साथ भलमनसाहत और ढंग से पेश आना और जहां ऐसा नहीं था, वहां तड़ीबाज़ी और धमकियों से काम लेना, लड़ने-झगड़ने को तैयार रहना। हल्केदार कभी-कभी उसे छोटी-छोटी सभाओं में भाषण देने की भी अनुमति दे देता। ख़ूब बढ़िया तक़रीर करता था बाख़्तीगुल। जब तक मन में किसी प्रकार का ऊहापोह नहीं आया वह निष्ठा और लगन से काम करता रहा। वह ताड़ गया कि लोग अब उसे उसी नज़र से देखते हैं, जिस नज़र से कभी वह ख़ुद सात्मेन के कारिन्दों को देखा करता था। चरवाहे की ख़ुशी फ़ौरन हवा हो गई।

सात्मेन ने अभी तक किसी तरह की कोई परेशानी पैदा नहीं की थी। लगभग एक साल गुज़र गया, किन्तु जारासबाई ने भी सात्मेन की कोई चर्चा नहीं की। बाख़्तीगुल ने यह

समझने की कोशिश की कि हल्केदार के मन मे क्या है। वह जितना अधिक इसके बारे मे सोचता, उतना ही अधिक उसका मन उदास होता। यह थी धोखे की दुनिया और खामोशी थी सन्देहों से ओतप्रोत।

पतझर मे चुनाव होनेवाले थे और साल शुरु होने के साथ बेल्कार, बुर्गेन और अन्य स्थानों पर वंशों के बीच छिपी-छिपी और उलझी-उलझायी खीचातानी शुरू हो गई थी। हर महीने यह अधिकाधिक उग्र और खुला रुप लेती जाती थी।

"यहा किसी तरह की नेकी की उम्मीद नही करनी चाहिये," दूरदर्शी वाग्नीगुल ने अपने आपसे कहा। मगर वह किसी तरह भी यह नही भाप सकता था कि मुसीबत किस रुप में उसके सामने आयेगी।

झगडे अधिकाधिक उग्र रुप लेते जाते थे। वे मामूली लोगों के लिये अनबूझ थे, उनकी समझ से परे थे। ये बहुत पहले से ही हल्के की सीमा से कही दूर जा चुके थे और उन्होंने लगभग आधे विराट प्रदेश को अपनी लपेट में ले लिया था। शक्तिशाली धनी वंश, बाई और मुखिया इसमें उलझ गये थे, उन्होंने गड़े मुर्दे उखेड़ना और पुराने झगडों की आग को हवा देना शुरु कर दिया था।

कमजोर वंश सहारा ढूढने थे और ताकतवर अपने साथी। चुनाव जैसे-जैसे नजदीक आते गये, वैसे-वैसे हल्कों मे दो बडी ताकतें साफ़ तौर पर सामने आ गई। एक का मुखिया था बेलकार हल्के का हल्केदार जागरगाई और दूसरी का— बुर्गेन्स्र हल्के का मुखिया साल्मेन का भाई—साट। दोनों मे

अपने-अपने छिपे हुए दलाल और प्रतिद्वन्द्वी के शिविर में भाड़े के टट्टू भी थे।

ऐसा प्रतीत हो सकता था कि नैल्कार में जारासबाई की जो स्थिति थी, उसकी तुलना में साट अपने हल्के में ज्यादा ताकतवर और मजबूत था। साट को अनेक, एकजुट तथा घमंडी कोज़ीयाक परिवारों का समर्थन प्राप्त था। जारासबाई के पक्ष में केवल दो-तीन धनी और प्रभावशाली वंश थे। मगर स्तेपी में भला ऐसे दो वंश भी हो सकते हैं, जिनमें आपसी दुश्मनी न हो? लेकिन प्रदेश में चालाक जारासबाई के घमंडी साट और सभी अन्य हल्केदारों से कहीं अधिक सम्पर्क-सम्बन्ध थे। इसलिए उन सबकी नुकेल जारासबाई के हाथ में थी।

सख्त गर्मी में स्तेपी में भड़क उठनेवाली आग की तरह ये झगड़े अधिकाधिक तेज़ी पकड़ते गये।

सुनहरे बटनोंवाले रूसी कर्मचारी अर्थात् प्रादेशिक संचालक के दफ्तर में सभी तरह की चालाकी भरी चुगलियों और शिकायतोंवाले कागज़ पहुंचने लगे, जिनपर ढेरों हस्ताक्षर होते और वंशों की मुहरें लगी होतीं।

साट के हिमायती मुखियों ने जारासबाई की मनमानी के बारे में खूब जी भर कर शिकायतें कीं। हर बार उसकी जांच की जाती और उसे अपमानजनक तथा बड़े-बड़े जुर्माने देने पड़ते। मगर जारासबाई हर बार बिल्कुल बचकर निकल जाता। दूसरी ओर साट नगर में जाकर फंस गया। जारासबाई की चुगली के फलस्वरूप साट को पन्द्रह दिन

के लिये प्रादेशिक जेल में बन्द कर दिया गया। सिर्फ़ ख़ुदा ही जानता है कि ऐसा मार्का मारने के लिये जारासबाई ने कितनी तिकड़मबाज़ी की, कितनी रक़म लुटाई। मगर था यह बहुत बड़ा काम।

सभी ओर यही चर्चा होने लगी:

"ख़ुद तो आ गया बिल्कुल दूध धोया... और उसके मुंह पर ख़ूब कालिख पोत दी, अच्छी तरह उसकी जड़ों में पानी दे दिया... पन्द्रह दिन-रातों तक जेल में बन्द करवा दिया! वाह बाई, वाह!"

जारासबाई की इस कामयाबी के बाद उसके हिमायतियों की संख्या बढ़ गई, विरोधी भी ज़्यादा हो गये। जहां डर है, वहीं डाह भी।

मुखिया चरागाहों में लगातार घोड़े कुदाते फिरते रहते। वे कहीं ख़ुशामद करते तो कहीं धमकी देते। उस साल गर्मी भी ख़ूब कड़ाके की पड़ी और उन्हें चैन से पानी पीने तक की फ़ुरसत नहीं मिली। चुनाव, चुनाव... तीन सालों के लिये हुकूमत!

जारासबाई ख़ूब ज़ोर-शोर से साट के पक्ष की कमज़ोरियों-ख़ामियों को खोजता रहता। वह अपने गिर्द ऐसे लोगों को जमा करता, जो साट से नाख़ुश थे, जिनका उसने अपमान किया था, जो डांवांडोल थे या ऐसे ही आवारा क़िस्म के थे। वह उनपर ख़ूब पैसा लुटाता, उनकी जेबें गर्म करता और जहां-तहां पशु बांटता फिरता। उसे मालूम था कि साट भी ऐसा ही कर रहा था इसलिए वह अपने लोगों पर कड़ी

नज़र रखता; जिनके बारे में सन्देह होता, उन्हें ज़्यादा ख़ुश करता और साट से ज़्यादा पैसे देता। तीन साल के लिये हुकूमत! ख़र्च की हुई एक-एक कौड़ी बड़ी आसानी से वापिस आ जायेगी।

वक़्त गुज़रता जाता था और यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा था कि किसका पलड़ा भारी है। साट को कोज़ीबाक परिवारों पर पूरा यक़ीन था और वे अपनी शेख़ी बघारते हुए जारासबाई की दौड़-धूप का, उसके अन्तहीन ख़र्च का मज़ाक़ उड़ाते।

"शहर में यह चील है, मगर हल्के में चिड़िया। हम बेलतारियों का घमंड चूर-चूर कर देंगे..." कोज़ीबाक कहते, और वाफ़ीगुल अनुभव करता था कि मामला आख़िर क्या रुख़ लेगा।

हां, तो जब जारासबाई के घोड़ों के झुण्ड पहाड़ी चरागाहों में जा रहे थे तो हड़बड़ी में जारासबाई की बछेरोंवाली तीन घोड़ियां और मोटा-ताज़ा बछेरा ग़ायब हो गये। उनकी तलाश की गई तो चोरों का सुराग़ मिल गया। बुर्गेन में जारासबाई के भाड़े के वफ़ादार टट्टू ने ख़बर दी कि साट के आदेशानुसार सात्मेन के लोग घोड़ों को ले भागे हैं। पीछा करनेवाले चोरों के पीछे-पीछे ही वहां जा पहुंचे। जारासबाई के जवानों ने घोड़े लौटाने की मांग की, मगर सात्मेन ने बड़ी बेहयाई से उन्हें गन्दी-गन्दी गालियां दीं और धकेलते हुए गांव से निकलवा दिया।

जारासबाई को रात भर नींद नहीं आई – गुस्से से दम घुटता रहा। पौ फटते ही उसने अनिक देर ..

और सारसेन को आदेश दिया कि वह शिकायत लिखकर कागज़ नगर में भिजवा दे। वास्तीगुल को आशा थी कि हल्केदार कागज़ देकर उसे ही भेजेगा, मगर बाई ने ऐसा नहीं किया। वास्तीगुल ने हैरान और नाराज़ होकर घोड़े का ज़ीन खोल दिया। सारी सुबह बाई के बड़े-से ख़ेमे के पास लोगों की भीड़ लगी रही, उसमें से लोगों की बातचीत की ऊंची आवाज़ें आती रहीं। बुजुर्ग यहां वाद-विवाद करते थे, बुरा-भला कहते थे और धमकियां देते थे।

दोपहर होने पर जब सफेद दाढ़ियोंवाले सभी बुजुर्ग चले गये और ख़ेमों की छाया में गर्मी से बचते, ठंडे और ताज़ादम करनेवाले दही की, जिसे कुमीस कहते हैं, चुस्कियां लेने लगे, केवल तभी जारासबाई ने वास्तीगुल को अपने पास बुलाया। वास्तीगुल ने जैसे ही बाई का तमतमाया हुआ और ऐसा चेहरा देखा *जिसपर एक* रंग आता और एक रंग जाता था, वैसे ही उसका माथा ठनका। नाक-भौंह सिकोड़े, चाबुक हिलाता हुआ और बाइयों में से सबसे हट्टा-कट्टा, धीर-गम्भीर और काला कोविश मालिक के दाईं ओर *खड़ा था।*

जारासबाई ने वास्तीगुल को अपने पास बिठाया, उसे कुमीस डालकर दिया और स्वयं बढ़िया प्याले से चुस्कियां लेते हुए उसने यहां से बातचीत शुरू की कि जैसा कि सभी जानते हैं और सभी ने अपनी आंखों से देखा है, ख़ुदा की मेहरबानी से वास्तीगुल का जितना बुरा मान कुछ बुरा नहीं गुजरा है। बाई ने उसे किसी तरह के ऊल-जलूल कामों में नहीं फंसाया और उसकी ताकत को मर्दों के लायक काम की

ख़ातिर बचाये रखा। अब वाल्तीगुल समझ गया कि उसके अजीब ढंग के शान्त और आसान जीवन का अन्त हो गया।

"जब तक डंडा हाथ में नहीं लेंगे, तब तक कमीने गीदड़ दुम दबाकर नहीं भागेंगे," जारासबाई ने कहा।

कोकिश ने थूक और बूट पर चाबुक मारा। वाल्तीगुल का हाथ कांप गया और कुमीस नीचे गिर गया।

चरवाहा समझ गया कि अब सब से अधिक भयानक बात होने जा रही है—पुरानी बदक़िस्मती फिर से सिर उठाने जा रही है।

"चुपचाप बैठे रहेंगे तो बाज़ी हार जायेंगे," हल्क़ेदार कहता गया। "बैठे बैठे मुह ताकते रहेंगे तो वे हमारी गर्दनों में तौक़ और जानवरों के गलों में फंदा डाल देंगे। हमारे लोगों को मार डालेंगे और घोड़ों को हांक ले जायेंगे। अपने ही लोग कौड़ियों के बदले हमारा भंडाफोड़ कर डालेंगे... लगता है, वाल्तीगुल, कि वह घड़ी आ गई, जिसका हम-तुम साल भर इन्तज़ार करते रहे हैं।"

वाल्तीगुल चुप रहा।

"आज ही तुम अपनी पसन्द और भरोसे के कोई दलेर जवान चुन लो और चल, ख़ुदा का नाम लेकर चल दो! गाल्मेन या गाट के झुण्ड खोजने की ज़रूरत नहीं, किसी भी कोर्डावाक परिवार पर टूट पड़ो। दक्खिन जंगल के ऊं का झुण्ड भगा लाओ। फिर तो तुम मर्द ही हो... लिए यह कोई नई बात तो है नहीं..."

वास्तीगुल चुप्पी साधे रहा। उसने खत्म न किये हुए कुमीस वाला प्याला एक तरफ रखा और अपने कुरते से हाथ पोंछे। उसे अपने गले में फांस-सी अनुभव हुई।

"वह घडी आ गई, जिसका इन्तजार था..." यह सब क्या है? क्या बहुत दिन गुजर चुके हैं कि जब जारासबाई एक पालतू जानवर की तरह मुझे अन्य बाइयों और मुखियों को दिखाया करता था? बाई की प्रशंसा करते हुए वे अभागे की पीठ थपथपाते थे और कहते थे कि आदमी को सही रास्ते पर चलना चाहिये। कब की बात है यह? कल की ही तो। और आज – "खुदा का नाम लेकर चल दो"? लोग क्या कहेंगे? सेइत को वह क्या कहेगा?

कोकिश वास्तीगुल के सामने उकडूं बैठ गया और अपनी साड जैसी गर्दन फुला कर हंसता हुआ बोला:

"अरे, यह तुम्हें हुआ क्या है? बाई की रोटियां खा-खाकर क्या भोग्न बन गये हो? धाया बोलनेवाले को तो ऐसा काम खुदा दे। वह तो कब्र से उठ आयेगा इसके लिये!"

मगर वास्तीगुल यह सुनकर मुस्कराया नहीं। जारासबाई ने वास्तीगुल के लिए और कुमीस डालते हुए कहा

"जैसा कि तुम और बाकी सभी लोग जानते हैं, पहल साहब ने ही की है। न वह ऐसी हरकत करता और न हमारे लिए ऐसा कदम उठाने की नौबत आती। उन्होंने खुद ही पहले अपने हाथ खींच लिये हैं और हम ईमानदारी से धाया बोल कर हिसाब बराबर कर रहे हैं! और अब

वे चोरटे चाहे कहीं भी क्यों न जायें, बेशक लाट साहब के पास भी, सभी लोग – क्या कज़ाख़ क्या रूसी – हमारा ही पक्ष लेंगे. . समझ गये न?"

"नहीं बाई . नहीं समझा। सब कुछ उलझा-उलझाया हुआ है मेरे दिमाग में," दर्दभरी और दबी घुटी आवाज में बाल्तीगुल ने जवाब दिया। "एक बात जानता हूं कि पतसर मार्ई कि मार्ई और इस पतसर मे चोर और धावामार दोनो को ही सूली दे दी जायेगी .. बहुत दुख-मुसीबतें देखी-जानी हैं मैंने! इतनी अधिक कि अब और सहने की हिम्मत नहीं रही। मैं तुम्हारी मिन्नत करता हूं कि मुझे नहीं भेजो!"

जागनबाई ने लाल-पीला होते और उसकी बात काटते हुए कहा.

"सच में तुम सूली की चिन्ता करने लगे हो? लानत है तुम पर दूरदर्शी! .. अपना कर्तव्य भूल गये? तुम्हें अपने पूर्वजों की साहसी आत्माओं का भी ध्यान नहीं रहा? लाट ने तुम्हारे बाप को तबाह किया। लालमैन ने तुम्हें यतीम बनाया। मैं तुम्हें लाट और लालमैन से बदला लेने की ताकत दे रहा हूं। अगर ऐसा मौका हाथ से निकल जाने दोगे, तो मैं तुम्हें बुज़दिल और गद्दार समझूंगा, यह मानूंगा कि तुम्हारी बांहों में दम-खम नहीं, तुम पर दिमाग और काहिल हो, जिसे मैंने बेकार ही अपने टुकड़ों पर पाला!"

"तुम मुझे क्या सिखा रहे हो, मालिक?" बाल्तीगुल उदासी से कहा। "बेटे के सामने क्या सिखाकर पेश कर

जागनबाई दबे-दबे हंसा।

"मैं ही हर चीज के लिए जवाबदेह हूं! धरती के मालिक और आसमान के मालिक के सामने भी! मैं ही पेट पालता हूं, मैं ही हुक्म देता हूं। मेरा हुक्म – मेरा ही गुनाह! खुदा पर भरोसा करो और जाओ..."

"बस, काफी बातें हो चुकीं," कोकिश ने कहा। "बाई, तुम यकीन करो कि वह जायेगा।"

जारासबाई धीरे-धीरे अपनी जगह से उठा।

बाल्तीगुल ने झपटकर बाई से पहले उठना चाहा, मगर उसके घुटने जमीं-से रह गये, वह हतप्रभ और बुत बना-सा घुटनों के बल ही बैठा रह गया।

६

उसी दिन बाल्तीगुल की रहनुमाई में दसेक जवानों ने जारासबाई, सारसेन और कोकिश के घोड़ों के झुण्डों में से लम्बी-लम्बी दुमों और तेज दौड़नेवाले सब से अच्छे घोड़े छाट लिये। तैयारी को छिपाया नहीं गया, क्योंकि वे न्यायपूर्ण धावा बोलने जा रहे थे। सन्ध्या को जवानों को विदा करने के लिए गांव के सभी छोटे-बड़े लोग जमा हुए।

जवान सफेद रंग के साधारण चोगे पहने थे। मगर पोशाक घोड़े ही मर्द की खूबसूरती होती है। वह होती है उसकी शान, उसके सुघड़ घोड़े थे। खूब सजे जवान खड़े हो गये। उनके गठे हुए कंधों पर चोगे बिल्कुल कसे हुए थे। देखने में ऐसा लगता था कि पूरा साम्पर पत्थर को चूर-चूर कर डालेंगे, साथ ही वे मवालियों की तरह

बड़े चुस्त, बहुत फुर्तीले थे। धावामार शरारतें और भोंडे मजाक करते थे मानो कोई दिलचस्प, आह्लादपूर्ण खेल खेल रहे हों, गाववालों के सामने अपनी और घोड़ों की नुमाइश कर रहे थे। घोड़े ऐसे थे कि उन पर से नजर ही न हटे! बंधी हुई पूछोंवाले घोड़े, जिन पर नीचे और चपटे जीन कसे थे, अपने सुडौल सिरों को घमंड से अकड़ाये हुए बेचैनी से पैर बदल रहे थे। ये घुड़दौड़ों में जीतनेवाले तेज़ घोड़े थे। शाम की हल्की-हल्की रोशनी में साफ-सुथरे और मोटे-ताजे घोड़े मखमल की तरह चमक रहे थे। घोड़े एक जगह पर खड़े न रहकर घुड़सवारों के नीचे उछल-कूद कर रहे थे और गाव में ढोल की ढमढमाहट के समान टापों की हल्की और दबी-दबी आवाज गूंज रही थी।

काल्नीगुल का इन्तजार हो रहा था। वह बड़े खेमे से हल्केदार की शुभकामनायें लेकर निकला, मानो बदला-बदला-सा। वह भी मामूली-से कपड़े पहने था। और यह चीज़ सभी को बहुत खली। मगर उसके रंग-ढंग और चाल-ढाल में कुछ नई बात थी, पहले अनदेखी-अनजानी। चोगा केवल बायें कंधे को ढके था और वह दायीं आस्तीन को पेटी में खोंसे था ताकि अपने हाथ को आज़ादी से हिला-डुला सके। वह पेटी में छः गोलियोंवाली रिवाल्वर भी खोंसे हुए था। काल्नीगुल किसी पर गोली तो नहीं चलायेगा, मगर इस रिवाल्वर से जाहिर हो जाता था कि मुखिया कौन है, कौन सब से पहले चोट करेगा और कौन अपने बराबर गद से उसके वार रोकेगा।

वाल्तीगुल धीरे-धीरे और बड़े रोब से अपने साथियों की ओर बढ़ चला। उनकी नजरें उस पर टिकी हुई थीं। ऐसा आदमी साथ में हो तो क्या खतरा हो सकता है। वह अन्य सभी की तुलना में अधिक मजबूत और हृष्ट-पुष्ट था। उसकी बायीं बाहु में, कलाई से कंधे तक की उसकी उभरी-उभरी मांस-पेशियों में भारी लोच थी, ताकत का सागर हिलोरें ले रहा था।

वाल्तीगुल का चेहरा भी मानो दूसरा ही था। उसकी सिकुड़ी-सिमटी आंखों में अदम्य और विह्वल जोश झलक रहा था। केवल चुभती हुई मूछों के नीचे ही अप्रत्याशित-सी हल्की-हल्की, स्वप्नद्रष्टा की सी मुस्कान।

"ऐ जवानो।" वाल्तीगुल ने अधिकारपूर्ण ढंग से एक बारगी पुकार कर कहा। "तुम्हारा सफर कामयाब रहे।" घोड़ों की टापों की आवाज और खामोशी में उसका स्वर गूंज उठा।

"सभी को कामयाबी मिले, सभी को!" जवानों ने एकसाथ जवाब दिया।

"ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा!" विदा करनेवालों ने सुर में सुर मिलाया।

वाल्तीगुल के घोड़े के करीब पहुंचने से पहले ही एक युवा चरवाहा हल्के रंग का बड़ा और मजबूत घोड़ा लेकर उसके पास पहुंच गया। अस्त होते हुए सूर्य की लाल लाल किरणों में यह घोड़ा एक बड़े अंगार की ज्वाला के समान प्रतीत हो रहा था। वह [illegible] का सब से अधिक मनपसन्द घोड़ा

था। आरामवाई दौड़ों के समय, स्तेपियों में अनेक कोसों की लम्बी मंजिल तय करने के लिए इस से काम लेता था।

चरवाहे ने इज्जत के साथ सहारा देकर सरदार को घोड़े पर चढ़ाना चाहा, मगर वाल्गीगुल ने लगाम के सिरे को पेटी में खोंसा और रकाबों को लगभग छुए बिना ही उछलकर ज़ीन पर जा बैठा। घोड़े की पीठ कुछ दब गई और वह एक ओर को कोई पांचेक कदम पीछे हट गया।

"हां, तो चलो," एड़ लगाते हुए वाल्गीगुल ने आदेश दिया।

घुड़सवार एक दूसरे से सटते हुए वाल्गीगुल के पीछे-पीछे अपने घोड़े दौड़ाने लगे। घोड़े दौड़ाते हुए ही वे ज़ीन के साथ अपने भाले और सोंटे ठीक करने लगे। उनमें से कुछेक तो बगल में ऐसे लापरवाही से सोंटा दबाये हुए थे मानो लड़ने-भिड़ने नहीं, सैर-सपाटे को जा रहे हों।

गांव के मर्द, औरतें और बच्चे शोर मचाते, हो-हल्ला करते और बढ़ावा देते हुए इनके पीछे-पीछे भागे। स्तेपी में साकार यौवन, जवांमर्दी और बल बढ़ा जा रहा था। जब यह जवांमर्दी अपना रंग दिखायेगी तो सैलाब को भी कुचल देगी, मगर डालेगी...

शाम के झुटपुटे में हल्के रंग के घोड़ों की आकृतियों की झलक मिलती रही, फिर वे एक काले धब्बे में बदलीं और फिर दूरी पर गायब हो गईं। मगर सहरों के शोर के समान टापों की मन्द होती हुई आवाज़ देर तक सुनाई देती रही।

इस तरह यह सारा मालूम हुआ जिसे ओरे-माने सवार लोग [illegible] कहते थे। इस से बाईं ये

घमंड की तुष्टि होगी और ग़रीबों की आजादी की सदियों पुरानी लालसा तृप्त होगी। गरीब पिटेंगे और बाइयों को मिलेंगे मुफ़्त घोड़े। हरेक को वही मिलेगा, जो बाइयों के बाई, सबसे बड़े क़ाज़ी यानी ख़ुदा ने उसकी किस्मत में लिख दिया है।

पौ फटने तक बाख़्तीगुल और उसके जाबाज़ों ने अपना काम पूरा कर लिया। उन्होंने साठ की दसेक जवान घोड़ियाँ और बड़े अयालोंवाला एक बढ़िया घोड़ा चुरा लिया। वे पीछा करनेवालों से बड़ी आसानी से बच निकले, यद्यपि उन्हें अपने पीछे गोलियां दगने की आवाज़ें भी सुनाई दीं। वे तीन हल्कों की सीमा पर वीरान और ख़ामोश पहाड़ों में सही-सलामत आ छिपे।

रास्ते में, किसी अनजाने गांव में से उन्होंने एक साल का मेमना भी उठा लिया। बस, कुत्ते ही उनके पीछे भौंकते रह गये। पत्थरों पर चकमकी से आग जलाई गई। बाख़्तीगुल ने मांस उबालने का आदेश दिया और ख़ुद नंगी और भुरभुरी चट्टान पर चढ़ गया।

उसके सामने ईंट के रंग की रक्त-रंजित-सी पैने शिखरों-वाली चट्टान दिखाई दे रही थी। उसके पीछे सूअर के बालों की तरह चीड़ का जंगल दिखाई दे रहा था। चीड़ के बड़े-बड़े और घने वृक्ष ऐसे काले-काले दिख रहे थे मानो झुलसे हुए हों। इसके ऊपर कुछ नीली-नीली और चमकती हुई तथा धुंधली चादर छाई थी। इसके और ऊपर मानो सूर्य आसमान से छीन ली गई बर्फ़ की गोल-गोल चोटी चमक रही

थी। यह बहुत ही बढ़िया सफेद खेमा इन्सान की पहुंच के बाहर था। असीम आकाश में उड़ता हुआ उकाब गौरैया-सा प्रतीत हो रहा था।

बाल्तीगुल ने ऊपर की ओर नजर दौड़ाई – लाल चट्टानें, काले जंगल, बर्फ के सफेद खेमे और आकाश में उड़ते हुए उकाब की ओर देखा। उसका दम घुटने-सा लगा। वह देख रहा था और मन ही मन सोच रहा था : "जहां से भागा, वहां ही आया, बस, यह ही मैंने पाया!"

नीचे, अलाव से हल्का-हल्का लहरियेदार धुआं उठ रहा था, आग की गंध आ रही थी, जवान लोग औरतों की तरह बतिया रहे थे और छोकरों की तरह शरारतें कर रहे थे। उनके पैरों के नीचे कच्चे, भुरभुरे और अविश्वसनीय रोड़े आवाज पैदा कर रहे थे। अपनी सख्त मूछों को चबाते हुए बाल्तीगुल ने आंखें सिकोड़ीं।

रात के धावे का जोश ठंडा पड़ गया था मानो नशा उतर गया हो। दिल में कड़वाहट-सी बाकी रह गई थी।

"आह. . मेरे लिए सब सब बराबर है..!" बाल्तीगुल ने ऊंची आवाज में कहा।

"मेरी नेकनामी हो या बदनामी – मेरे लिए सब सब बराबर है। मेरी किस्मत आरामबाई के हाथों में है। यह बाई का काम है कि किसी को सजा दे और किसी पर मेहरबानी करे। इतना भी खुदा का शुक्र है कि यह बाई सालेन जैसा नहीं है। आरामबाई नहीं भूलेगा कि मैंने वफादारी से और मन लगाकर उसकी सेवा की है।"

"हमारे लिए तो यह भी बड़ी बात है, बेटे," वाल्तीगुन फुसफुसाया। "ऐसा ही सोचेंगे हम तो..." और भुरभुरे रोड़ों पर कदम रखता हुआ वह अलाव की ओर चला गया।

इस तरह से शुरू हुआ यह जवाबी धावा .. उस सफल और निर्णायक रात के साथ वंशो और वंश-दलों के बीच ऐसा लड़ाई-झगड़ा शुरू हुआ, जैसा कि पहले कभी नहीं हुआ था। रात के घुप अंधेरे और दिन के उजाले में, स्तेपियों और पहाड़ों में जोरदार मार-पीट होने लगी, पीछा करनेवालों की भयानक चीख-पुकार सुनाई देने लगी, खून बहने लगा और जलन पैदा करनेवाली काली धूल दहकते आकाश को छूने लगी। लड़ाई-झगड़ों और धावों के बाद पुराने समय की भांति सभी चरागाहों और गांवों में लुकी-छिपी चोरी भी फैल गई। कुछ ही समय बाद तो खुद खुदा भी यह नहीं कह सकता था कि कहां धावा बोला गया है, कहां चोरी की गई है, कहां दिन के वक्त सीना जोरी हुई है और कहां आधी रात को चोरों ने अपनी करनी की है।

ठीक ही कहते हैं कि स्तेपी के ये चुनाव जाड़े के बर्फीले अंधड़ के समान थे। कोई भी यह नहीं कह सकता कि स्तेपी में जाड़े की यह मुसीबत कब टूट पड़ेगी। और चुनाव होते थे हर तीन साल बाद! जाहिर था कि आगमबाई ने या तो बाजी मारने या फिर पूरी तरह अपने को चौपट कर देने का फ़ैसला कर लिया था।

"हमारे लिए तो यह भी बड़ी बात है, बेटे," बाएतीगुल फुसफुसाया। "ऐसा ही सोचेंगे हम तो..." और भुरभुरे रोड़ों पर कदम रखता हुआ वह अलाव की ओर चला गया।

इस तरह से शुरू हुआ यह जवाबी धावा... उस सफल और निर्णायक रात के साथ वंशों और वंश-दलों के बीच ऐसा लड़ाई-झगड़ा शुरू हुआ, जैसा कि पहले कभी नही हुआ था। रात के घुप अंधेरे और दिन के उजाले में, स्तेपियो और पहाडो मे जोरदार मार-पीट होने लगी, पीछा करनेवालों की भयानक चीख-पुकार सुनाई देने लगी, खून बहने लगा और जलन पैदा करनेवाली काली धूल दहकते आकाश को छूने लगी। लड़ाई-झगडो और धावों के बाद पुराने समय की भांति सभी चरागाहो और गावों में लुकी-छिपी चोरी भी फैल गई। कुछ ही समय बाद तो ख़ुद ख़ुदा भी यह नही कह सकता था कि कहा धावा बोला गया है, कहा चोरी की गई है, कहां दिन के वक्त सीना जोरी हुई है और कहा आधी रात को चोरों ने अपनी करनी की है।

ठीक ही कहते हैं कि स्तेपी के ये चुनाव जाडे के बर्फीले अंधड के समान थे। कोई भी यह नही कह सकता कि स्तेपी मे जाडे की यह मुसीबत कब टूट पडेगी। और चुनाव होते थे हर तीन साल बाद! जाहिर था कि जारासबाई ने या तो मार्का मारने या फिर पूरी तरह अपने को चौपट कर देने का फ़ैसला कर लिया था।

पहले की भांति रोज-रोज उसके घर मे लोगों की भीड़ लगी रहती, वे शोर मचाते और सलाह-मशविरा करते, मेहमान ही मेहमान जमा रहते... बेहिसाब जानवर काटे और मेहमानों को खिलाये जाते, वहुत से फदों में फासकर भेंट कर दिये जाते। पानी की तरह पैसा बहाया जाता था। जारासबाई के पास वसन्त मे जो रकम थी, उसकी एक-तिहाई उसने एक-दो महीने में ही खर्च कर डाली थी। अब वह बाख्तीगुल और उसके जवानों को चैन से नही बैठने देता था। साल्मेन भी कभी ऐसा ही करता था। मगर मक्कार जारासबाई कम से कम इतना तो कहता था कि खर्च पूरा करने के लिए नही, बल्कि बदला लेने की खातिर उन्हे चोरी-चकारी को भेजता है। सचमुच वह सुन्दर ढंग से अपनी बात कहता था।

इसमे भी आश्चर्य की कोई बात नही है कि मक्कार जारासबाई ने एक बडी सफलता प्राप्त की—एक जोरदार सहारा प्राप्त कर लिया, साट के लोगों मे से एक ताकतवर साथी अपनी ओर फोड लिया। जारासबाई ने अप्रत्याशित ही बुर्गेन्स्क हल्के के दोसाई वंश के गांववालों से दोस्ती कर ली। यह खाते-पीते लोगो का गाव था। उन्हें कृतघ्न कोजीवाक फूटी आखों नही सुहाते थे। इस दोस्ती के लिए जारासबाई को खास और बहुत बड़ा खर्च करना पड़ा।

स्तैपी की राजनीति में घुटे हुए अक्लमन्द काज़ी ऐसा कहा करते हैं—"सरकंडे रोकें बहते पानी को और लड़की दोस्ती मे बदले गहरी दुश्मनी को।" हां, हां, जवान लड़की

ऐसा कर सकती है... दोसाई कुल के मुखिया की एक जवान और सुन्दर बेटी थी—कालिश। जारासबाई ने उसके पास एक बिचौलिया व्याह तय करने के लिए भेजा।

वाल्तीगुल फ़ौरन भांप गया कि इसमें जारासबाई की क्या चाल छिपी है। यह भी मुमकिन है कि जारासबाई लड़की की ख़ूबसूरती पर लट्टू हो गया हो और अपनी प्यारी बीवी को एक जवान सहायिका लाकर देना चाहता हो। मगर महत्त्वपूर्ण बात तो यह नहीं थी। असली बात तो यह थी कि जारासबाई ने पचास ऊंट खुद चुनकर लडकी के बाप के पास भेज दिये। यह बहुत बड़ी भेंट थी मानो वह खान की बेटी हो! इसके पहले भी लडकी के मां-बाप को बहुत-से तोहफे भेजें जा चुके थे।

सच है कि शादी का सम्बन्ध बढ़िया सम्बन्ध होता है। बड़ा मूल्य और उपहार देकर क़ायम किया गया रिश्ता कोरी क़समों से कहीं अधिक मज़बूत होता है। इस तरह दूल्हे और मंगेतर के गांव पेट की अन्तडियों की भाति आपस में सदा के लिए घुल-मिल गये। साट तो केवल दांत पीसकर रह गया। दोसाई वंश का गांव उसके रास्ते में बबूल का जंगल-सा बनकर रह गया, जिसे न तो पार किया जा सकता है और जिससे दामन बचाकर निकल जाना भी मुमकिन नहीं होता।

स्तेपी अपमानित नारी की भांति कराहती थी। धावा बोलनेवाले अपने जोश में कभी यहां तो कभी वहा टूट पड़ते

और निर्दोष लोग सभी तरह की मुसीबतों-यातनाओं के शिकार होते। ऐसे लोग, जिन्हे न तो साट से कोई मतलब था, न जारासवाई से कोई सरोकार। वे जार-जार आंसू बहाते, ढेरो ढेर गालियां देते और कोसते। जाड़े की भुखमरी ने मानो उनके जानवरों का सफाया कर डाला था!

जारासबाई ने बहुत बड़े पैमाने पर यह सारा काम संगठित किया। चुराये हुए जानवरों को वह अपने और पड़ोस के हल्के मे इधर-उधर कर देता, बिल्कुल व्यापारी की तरह। वाख़्तीगुल चुराकर लाता, कैरनबाई उनके दाम उठाता... एक लाता, दूसरा उन्हे चलता कर देता—बिना मोल-भाव के, आधी क़ीमत पर ही। *यही* कोशिश होती कि जल्दी से जल्दी और बिना कठिनाई के चुराये माल से पिंड छुड़ा लिया जाये। कंजूस साल्मेन कभी ऐसा नही कर पाया था। घोड़ों को तो जैसे जमीन निगल जाती थी—वे रात को आते और सुबह गायब हो जाते और इस तरह जारासबाई की जेब भारी की भारी बनी रहती।

वाख़्तीगुल ने इस सारे क़िस्से की ओर से आंख मूद ली। वह तो मानो तेज बुख़ार की बेहोशी में, स्तेपी की उस आंधी में रह रहा था, जब दिन के उजाले में भी कुछ भी दिखाई नही देता। धावे बोलकर वे जो जानवर भगा लाते थे, वे कहां जाते थे, उसे कुछ पता नही होता था। जारासबाई ने इस बात की चिन्ता की कि इस सम्बन्ध में धावामारों का सरदार वाख़्तीगुल पूरी तरह से निश्चिंत रहे। उसने सारसेन,

कैरनबाई और कोकिश को इस बात की बहुत कड़ी हिदायत की :

"जब तुम जागो, तो वह सोया रहे! .. अगर वह कही मुसीबत मे पड़ जाये और उसे भारी यातनाये दी जायें तो भी हमारा दूरदर्शी यह न बता पाये कि घोड़ों का क्या हुआ, हमने उन्हे कहां गायब किया।"

आख़िर चुनाव हुए। जारासबाई जीत गया – वह चेल्कार का हाकिम बना रह गया। साट पिट गया – उसे नही चुना गया। यह सच है कि दोसाई के गाववाले बुर्गेन मे अपने उम्मीदवार को सफल नही बना पाये थे, फिर भी कोजीबाक को तो मात दे दी गई थी। जारासबाई ने अधाधुध जो रकम उड़ाई, वह ख़ूब काम आई। अब उसका मौका आया था हाथ रंगने का, अपने हल्के और प्रदेश मे भी सत्ता की लम्बे बालोवाली सुनहरी भेड मूडने का। वह तीन साल के लिये हल्क़ेदार और ज़िलेदार हो गया था।

जारासबाई ने बाय़्तीगुल को अपने पास बुलवाया, उसकी बधाई स्वीकार की, बडी कृपा दिखाते हुए उसकी पीठ थपथपाई और उसे घर भेज दिया।

"घर जाओ और ख़ूब लम्बी तानकर सोओ। अपनी बीवी और बेटे को ख़ुश करो! अगर चाहो तो पूरे तीन साल तक मौज मना सकते हो, अगले चुनावो तक..."

बाय़्तीगुल ने खुलकर राहत की सास ली। वह चाहता था कि जल्दी से जल्दी मालिक की नज़र से परे चला जाये और मालिक भी यही चाहता था कि वह कही दूर ही जाये।

"तुम्हारी इच्छा ही मेरी इच्छा है, मेरे प्यारे मालिक," चरवाहे ने अदब से कहा।

"अच्छा अब तुम जाओ। आगे देखा जायेगा," सफल हो चुके हल्केदार ने उपेक्षा से कहा।

७

बरखा-कीचड़वाली पतझर आई। बाख्तीगुल ने अपने बेटे को घोड़े पर बिठाया और जाड़े के झोपड़े की ओर चल दिया। वह कभी-कभार मालिक के गाव में आता, उसे सलामी देने, आदर प्रकट करने। एक-दो दिन वहा बिताकर हल्के मन से अपने घर, सुखद पारिवारिक वातावरण में वापिस चला जाता। इन दिनो वह गाव मे अजनबी-सा लगता—काम-काज से, दफ़्तर से उसका न कोई वास्ता होता, न वह इस मे कोई दिलचस्पी लेता। वह तो अपने में ही मस्त रहता, लोगो की बातचीत मे कोई रुचि न प्रकट करता, अफवाहों पर कान न देता। इसलिये उसे कुछ भी मालूम नही था कि उसके इर्दगिर्द की दुनिया मे यानी मालिक के गुट्ट मे क्या हो रहा है। बस एक बात उसे हमेशा याद रहती थी कि कोजीबाक उनके साझे दुश्मन हैं... यह वह कभी नही भूलता था और बाक़ी किसी चीज़ की उसे परवाह नही थी।

और जब अचानक एक दिन पसीने के फ़ेन से तर घोड़े पर एक जवान आया और उसने ज़ीन से ही चिल्लाकर कहा—

"तुम्हें जारासबाई ने याद किया है..." तो वाख़्तीगुल कुछ विशेष घबराया नही और घोड़े पर सवार हो हरकारे के साथ रवाना हो गया।

गाव मे हल्के के सभी मुखिया जमा थे और... कुछ पराये लोग भी। अपने घोड़ों की पिछाड़ी बांध उन्हें चरने के लिये छोडकर वे सभी हल्केदार के गिर्द घेरा डालकर बैठ गये थे। वाख़्तीगुल ने दूसरों से कुछ हटकर ओराज वंश के लोगो को भी बैठे देखा। यह गाव बुर्गेन्स्क हल्के के पड़ोस मे था।

बुर्गेन मे ओराज़ का कुल, जारासबाई के सम्बन्धियों — दोसाई के कुल से कमज़ोर था। कोज़ीबाकों की तुलना में तो वह और भी अधिक कमज़ोर था। मगर जब तक ताकतवर एक-दूसरे का गला घोंटते रहे, उसी बीच ओराज़ कुल ने हल्के में अपने उम्मीदवार को सफल करा लिया। इस तरह चुनावों के बाद हारा हुआ साट बुर्गेन्स्क हल्के के नये हल्केदार को अपने इशारो पर नचाने लगा। यह तो स्पष्ट ही है कि कमज़ोर कुल का हल्केदार ख़ुद अपने पर ही भरोसा नही कर सकता था और इसलिये वह कोज़ीबाकों के हाथों मे खेलने लगा।

ओराज़ कुल के लोगों को देखकर वाख़्तीगुल ने सोचा — "लगता है कि इनकी शिकायत पर मुझे यहा बुलाया गया है।" और उसका अनुमान ठीक ही था। धावा बोलते समय उसके जवान इनके भी कुछ जानवर भगा लाये थे, क्योंकि वे भी बुर्गेन्स्क हल्के के निवासी थे... मगर एक अन्य बात समझने मे वाख़्तीगुल से अवश्य गलती हुई। जारासबाई ने उसे सीधा

मुह नही दिया। उसके सलाम का भी मानो अनचाहे, मन मारकर जवाब दिया। सलाम-दुआ के बाद ढंग से हालचाल भी नही पूछा, जैसा कि होना चाहिये था और उसपर ऐसे बरस पडा मानो किसी अजनबी से बात कर रहा हो।

"ए, बाख्तीगुल . . तुम अपनी हद नही जानते! सीमा से बहुत आगे बढ गये हो। मैंने तुम पर विश्वास किया और दूसरो को भी यकीन दिलाता रहा कि तुम गन्दगी मे कभी हाथ नही डालते हो! इधर मैं तो तुम्हारे लिये सब कुछ करता रहा और उधर तुम मेरे ही मुह पर कालिख पोतते रहे। किसलिये मुझे ऐसा बदला दिया है तुमने? कम से कम इतना तो बताओ मुझे..."

जारामबाई ने बाख्तीगुल से ऐसे कभी बातचीत नही की थी। हल्केदार आग-बबूला हो रहा था, लाल-पीला हुआ जा रहा था। बाई ने सच्चे और ईमानदार आदमी के जोश के साथ अपना दामन साफ बचाते हुए अपने नौकर से हकीकत बताने की माग की। बाख्तीगुल यह सुनकर हैरान हो रहा था कि उसका अन्नदाता उसे ही अपराधी ठहरा रहा है।

"मेरा क्या कुसूर है, मेरे मालिक? आप ऐसे बिगड़ क्यों रहे हैं! मेरे लिये क्या और शब्द नही थे आपके पास? पहले यह तो बतायें कि मेरा अपराध क्या है, फिर तरस खाये बिना कड़ी से कड़ी सजा दीजिये। झूठे आरोप सुनकर मन को बहुत दुख होता है। पहले हकीकत जान लीजिये, पहचान लीजिये..."

"कुछ भी नहीं जानना मुझे! वैसे ही नजर आ रहा

है मुझे कि यह तुम्हारा ही काम है... तुम्हारी ही करतूत है... सच-सच कहो : ओराज कुल के गाव से, बुर्गेन्स्क हल्के से तुम दो मुश्की और एक बादामी घोड़ा तथा बछेरोंवाली दो घोड़ियां चुरा लाये थे न? तुम्ही चुरा कर लाये थे... तुम्ही चुकाओ अब इनकी कीमत।" हल्केदार ने धमकाते हुए कहा।

वाख्तीगुल मालिक की ओर देखता हुआ चुप रहा। घोड़े भगा लाया तो भगा ही लाया... जो सच है, वह तो सच ही रहेगा... वाख्तीगुल इनकार करना, उसके सामने ही झूठ बोलना नही चाहता था। मगर यह मालिक क्या ढोंग कर रहा है—उसी के हुक्म से तो ओराज कुल के घोड़े भगाये गये थे। इस बात के यहा बहुत से गवाह भी थे। मगर वे भी वाख्तीगुल की ओर देखते हुए खामोश थे।

क्या मालिक ने नाता तोड़ लिया, अपने सरदार की ओर से मुह मोड़ लिया? नही, ऐसा नही हो सकता।

ऐसा तो वह केवल दिखावे के लिये कर रहा है... परायों के सामने.. उनकी आंखो मे धूल झोंकने के लिये... वाई ज्यादा अच्छी तरह से यह समझता है कि उसे क्या करना और क्या कहना चाहिये। इस समय इससे उलझना, उसके खेल मे खलल नही डालना चाहिये। शायद उसने कोई दूर की बात सोची है, कोई गहरा हिसाब-किताब जोड़ा है।

"तो मैंने न तो पहले ही कभी चालाकी से काम लिया है और न अब ही ऐसा करना चाहता हू," दूरदर्शी वाख्तीगुल ने कहा। "सब कुछ तुम्हारा ही तो है, मालिक, हमारे पेट

भी और जान भी। मैं तुम्हारी बात थोड़े ही काटूंगा! मेरा इन्साफ तुम्हारे हाथ मे है और तुम्हारा अल्ला के! घोड़े तो भगाये हैं मैंने। जो मनमाने सो करो ताकि ओराजो का पूरा हिसाब चुकता हो जाये। मुझे और कुछ नही कहना।"

सफेद और काली दाढियोंवाले सभी एकबारगी चहक उठे, हिले-डुले, उन्होंने आखें सिकोड़ी और उंगलियां दिखा-दिखाकर धमकाने लगे। चरवाहे की बात उन्हें पसन्द आई। हुकूमत को हमेशा यही अच्छा लगता है कि उसके सामने सिर झुकाया जाये।

फिर से हल्केदार की समझदारी और न्याय की प्रशंसा सुनाई दी। किसी ने बाख़्तीगुल के बारे में कहा:

"है कगाल, मगर दिल ख़ान जैसा दिलेर है। मर जायेगा, पर सचाई कहेगा।"

दूसरा बोला:

"जरूरत होने पर आदमी की हत्या भी कर डालेगा, पर मालिक से नही छिपायेगा। अगर भगा ही लाया है घोड़े, तो कहता है कि ऐसा किया है..." इस तरह भी हल्केदार की ही प्रशंसा की गई थी।

इस समय बाख़्तीगुल को भी ख़ुशी हुई कि मालिक को उसकी बात पसन्द आई है।

फिर भी एक बात उसकी समझ मे नही आ रही थी। इधर-उधर नजर दौडाने पर उसे शिकायत करनेवाले ओराज कुल के लोगों के क़रीब ही दोसाई कुल के लोग बैठे दिखाई दिये... बाख़्तीगुल को अपनी आंखों पर विश्वास

नही हुआ। यह कैसे हो सकता है? गर्मी भर उनके बीच सख्त दुश्मनी रही और अब ऐसे घुले-मिले नजर आ रहे हैं मानो नज़दीकी रिश्तेदार हों। ऐसे घुटने से घुटना सटाकर बैठे हैं मानो उनके बीच किसी तरह की कोई दुश्मनी, कोई मतभेद ही न हो।

यहा तो अपने आदमी के खिलाफ, बाख्तीगुल के विरुद्ध कार्रवाई हो रही थी। बेशक उसने साफ-साफ अपना कुसूर मान लिया था, किसी तरह की कोई अगर-मगर नही की थी, फिर भी हल्केदार की आवाज धीमी न हुई, उसके चेहरे पर नर्मी की झलक दिखाई न दी। अब जारासबाई गुस्से से ऊची आवाज मे भला-बुरा कहने लगा और आखिर मे धमकाते हुए बोला:

"अब तुम आगे मुझसे किसी तरह की रियायत की उम्मीद न करना। मैंने तुम्हारी पीठ थपथपायी, तुम्हे अपने कलेजे का टुकडा बनाया, तुम्हे अपना माना—आखिर क्यो? तुम्हारी ईमानदारी के लिये। अगर और गडबड करोगे, सचाई के रास्ते से एक कदम भी और हटोगे तो उसी घडी से मेरा तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही रहेगा, मैं तुम्हारे लिये बिल्कुल अजनबी हो जाऊगा। बहुत सोच-समझकर कदम उठाना .."

"यह तो अब हद ही हो गई।" बाख्तीगुल ने सोचा, मगर खामोश रहा।

दूसरे लोग भी चुप रहे। हल्केदार की आवाज़, उसके गुस्से, भलाई की बातो और उसकी भारी आवाज़ के उतार-

चढाव ने मानो उन्हें यन्त्रमुग्ध कर दिया था, उनका मन जीत लिया था, उनका मन मोह लिया था। बहुत ही गजब की आवाज़ थी उसकी, सचमुच खुदा की बढिया देन। सचाई और न्याय के रक्षक की ऐसी ही आवाज होनी भी चाहिये।

बाई ने ओराजो मे से सबसे बड़े की ओर संकेत करते हुए बाख्तीगुल से कहा.

"चुराये गये घोडो का यह मालिक अब तुम्हारे साथ जायेगा। तुम उसे अपने घर ले जाओ और खुद अपने हाथों से चार बढिया घोडे दो। वे चुराये गये घोड़ों से उन्नीस नही होने चाहिये ("मगर वे चुराये हुए घोडे कहां गये,"— वाख्तीगुल के दिमाग मे यह सवाल आया)। इसके अलावा अपने कुसूर की माफी के रूप मे एक घोड़ा और एक ऊंट भी देना... यही उचित और न्यायपूर्ण होगा।"

कुछ कहने के लिये वाख्तीगुल ने मुह खोला, मगर वह हकबकाकर चुप ही रह गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी ने उसके सिर पर डंडा दे मारा हो। आसपास बैठे लोग ऐसे चुप रहे मानो उन्हे सांप सूघ गया हो। स्पष्टतः वे भी आश्चर्यचकित थे...

वाई को मालूम है, बहुत अच्छी तरह मालूम है कि वाख्तीगुल के पास कितने और कैसे जानवर इकट्ठे हो गये हैं। वह सब जानता है और उसने आधे से अधिक दे देने के लिये कहा है .. ऊंट देने का भी आदेश दिया है!

नही, नही, जारामबाई बाद मे उससे ज्यादा जानवर लौटा देगा, जितने उसने वाख्तीगुल से लिये हैं। जरूर ऐसा

ही होगा! मालिक बाद में उसे बुलायेगा और परायों की अनुपस्थिति में उसे तसल्ली देकर शान्त करेगा। आज्ञाकारी नौकर को उसके जानवर वापिस देगा, उससे कुछ मधुर शब्द कहेगा ताकि न तो बाख़्तीगुल की दौलत में कोई कमी हो और न मन में ही कोई मैल बाक़ी रहे। यही उचित और न्यायपूर्ण होगा।

ओराज़ कुल के लोगों और बुज़ुर्ग सारसेन को अपने साथ ले जाते हुए बाख़्तीगुल ने ऐसे ही सोचा। सारसेन को इस बात की जांच करने के लिये भेजा गया था कि हल्क़ेदार के हुक्म की पूरी तरह तामील की गई या नहीं।

मगर एक, दो और फिर तीन दिन गुजर गये। हल्केदार ने बाख़्तीगुल को नहीं बुलवाया। मालिक को फ़ुरसत ही नहीं थी। बहुत-से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण काम थे जिन्हें टाला नहीं जा सकता था। बाई बाख़्तीगुल को भूल गया था। अपने जानी दुश्मन को ख़ुश करने के लिये उसने अपने वफ़ादार नौकर को घड़ी भर में लूट लिया, बुरी तरह उसकी बेइज़्ज़ती कर डाली.. आन की आन में उसे रौंद डाला... रौंदे हुए की ओर नजर घुमाकर देखा भी नहीं। क्यों ऐसा किया है उसने?

बाख़्तीगुल की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। हातशा का चेहरा उतरा हुआ था, आंखें सूजी-सूजी थीं। सेइत अपने पिता की ओर अनबूझ, कभी विचारों में डूबी और कभी उदासीन नजरों से देखता। कभी-कभी लड़का अपने अव्यक्त विचारों में खोया-खोया ज़रा सा हंस देता।

बाक्तीगुल इसके कारण खीझता और साथ ही डर भी जाता।

तरह-तरह की अटकलें लगाकर परेशान हुआ बाक्तीगुल अपने पड़ोसियो और पास के गावों में रहनेवाले दोस्तों के पास अपने दिल का दर्द सुनाने, उनसे सलाह-मशविरा करने और हालात का जायजा लेने के लिये गया। वह यह जानना चाहता था कि आगे उसे क्या करना चाहिये। मगर ये लोग कन्नी काटते-से प्रतीत हुए। किस्से-कहानिया और अफवाहें सुन-सुनकर उसका सिर चकराने लगा – जिन्दगी भर नहीं समझ पाऊंगा मैं इन्हे। अपने भाई तेक्तीगुल की मौत के बाद के समान ही अब फिर से उसे लगा कि जैसे वह कारवां से पिछड़ गया है, रेगिस्तान में अकेला रह गया, भटक गया है, कि उसके लिये आशा की कोई किरण बाकी नहीं बची। फिर से पत्थर की निर्दयी दीवार की भांति उसका निष्ठुर भाग्य उसके सामने आ खड़ा हुआ है। सभी लोग, सारी दुनिया दीवार के उस ओर है। वह एकदम अकेला, कटी हुई उंगली, टूटे हुए बाल के समान है।

गर्मी के दिनो के धावे तो बढ़िया दावतों के समान थे... पतझर मे उनका नशा उतर गया था। मगर जाहिर है कि नशा उतरा था गरीबों का, मोटी तोंदोंवालों का नहीं। जैसा कि बाप-दादों के समय होता था, वैसे ही अब भी काला सफेद और सफेद काला हो गया था। [illegible] मे एक ही उस्ताद थे! [illegible]

ऊंचा किये हुए घूमते थे और [illegible]

पकड़कर खीचा जा रहा था। बिल्कुल जाना-पहचाना और बहुत पुराना था यह दृश्य !

जैसे ही चुनाव खत्म हुए और हल्को मे धावो का शोर-शराबा कम होने लगा, वैसे ही प्रदेश मे इस सिलसिले मे कदम उठाये जाने लगे। पुलिस के बड़े-बड़े अधिकारियों के लम्बे-लम्बे कान खडे हुए। इन मामलो की तरफ नगर के बड़े-बड़े दफ्तरों का अपना ही रवैया था' किर्गीज़ियो के बीच (उस जमाने मे कज़ाखों को यही संज्ञा दी जाती थी) पूरी टोलियो की घुड़दौड आम हो गई है... लड़ाकू हल्को ने सिर ऊपर उठाया है। खुदा न करे कि यह बीमारी किर्गीज़ियों से कज़ाको मे फैल जाये...

चौकीदारो और पुलिसवालो की रिपोर्टों से साफ है कि अवज्ञा फैल गयी है। अफसरो की, ऊपर से लागू किये कानूनो की कोई परवाह नही करता।

हल्केदार एक-दूसरे के खिलाफ जो खुशामद भरे शिकायती खत भेजते थे, वे जलती आग मे घी का काम करते थे। उनके कागजो मे विद्रोह, विद्रोही, उकसानेवाले और चोर जैसे ढेरो ढेर भयानक शब्द भरे रहते... अफसरों की भाषा मे 'चोर' और 'विद्रोही' एक ही बात थी।

पतझर के एक ठडे दिन अचानक पुलिस के एक बड़े अफसर के हुक्म की मानो बिजली कडकी और सारा प्रदेश काप उठा। सभी हल्केदारो, सभी काजियो को कडी पूछ-ताछ और जाच करने तथा डाट-फटकार के लिये शहर मे बुलाया गया।

अब तो सारे प्रदेश मे हगामा मच गया। शीशे की दवातों

ग्रौर संगमरमर के स्याही चूसदानों से सजी हुई मेजो के पास बैठे हुए बड़े-वडे ग्रौर छोटे-छोटे ग्रफ़सरो ने ग्रपना पूरा रंग दिखाया। पुरानी ग्रादत के ग्रनुसार लोगों को डराया गया... चुने हुए हल्केदारो को पदो से हटाने की धमकी दी गई ग्रौर कुलो तथा पार्टियो के मुखियों को उनके गावो से निकाल देने का डर दिखाया गया। इस शोर-गुल मे उन्होंने घूस ले लेकर ग्रपनी वडी-बड़ी जेबें खू़ब गर्म की।

यह हिदायत करते हुए उन्हे छोड़ दिया जाता :

"श्रीमान बाई, तुम्हारे इलाके मे शान्ति होनी चाहिये!"

डाट-डपट का मोटी तोंदोवालों पर ग्रच्छा ग्रसर हुग्रा। घोड़ियो का दूध पी पीकर उन्हे जो नशा चढा था, वह घडी भर मे उतर गया। यहा तक कि प्लेग की तरह माज़िशो की लाइलाज बीमारी भी मानो कम होने लगी।

विरोधी दलों के मुखिया खू़ब हो-हल्ला करते हुए नगर की ग्रोर ऐसे गये मानो कोई पर्व मनाने जा रहे हों। वहा उन्होंने जैसे होड़ करते हुए वढ-चढकर दावते करनी शुरू की... भूरे ग्रौर दूसरे रगो के, पदमवाले ग्रौर बिना पदमों के घोडे काटे गये, ऊची-ऊची ग्रावाज मे क़ुरान पढा गया ग्रौर इन ग्रमीरज़ादों ने ग्रपने नर्म-नर्म ग्रौर सफ़ेद-सफ़ेद हाथ ग्रासमान की ग्रोर उठाकर लडाई-झगड़ों को खत्म करने ग्रौर वांछित सुलह कर लेने का ग्राह्वान किया। ग्रन्त में वलि के रक्त ग्रौर बहुत-से गवाहों के सामने क़समे खाई गईं कि ग्रब सदा के लिये वे जनता मे लड़ाई-झगड़े ग्रौर चोरी-चकारी का

अन्त कर देंगे, उन्होंने बडी मक्कारी से यह ढोंग किया कि न तो हम यह जानते ही हैं कि किसने चोरी शुरू की और न हमें किसी पर सन्देह ही है।

दूसरो के उदाहरण का अनुकरण करते हुए जारासबाई ने भी अन्य लोगो के सामने साट से सुलह कर ली।

सुलह बहुत आसानी से हुई। पकी दाढ़ियोंवाले इन दरिन्दो, झूठों के इन सरदारों ने इशारों से ही सब कुछ समझ लिया और मन ही मन पहले से ही यह तय कर लिया कि वे किसे दोषी ठहरायेंगे और पुलिस को खुश करने के लिये किसे मुसीबत का शिकार बनायेंगे, यद्यपि खुले तौर पर किसी का नाम नहीं लिया गया था।

बहुत अर्से से ही यह सिलसिला चला आ रहा था—प्रदेश में जब तक घूस नही देगा, चैन नही मिलेगा। मगर इस बार खास किस्म की घूस मागी जा रही थी—लोगों की घूस... अपराधियों की माग की जा रही थी...

शहर मे जारासबाई का एक अपना आदमी था—दुभाषिया तोकपायेव। जारासबाई उससे अपने दिल की बात कहता था, उससे कुछ भी नहीं छिपाता था। तोकपायेव उसके लिये रक्षक-देवता, अथवा यदि अधिक सही तौर पर कहा जाये तो मुखबर-फरिश्ता बन गया था। वह उन फ़रिश्तों मे से था जो जाड़े और गर्मी मे लगातार चढ़ावे और रुपये-पैसे पाते रहते हैं। मगर मे रहनेवाले इसी आरामतलब फरिश्ते ने कुछ समय पहले साट को जेल भिजवाने मे जारासबाई की मदद की, जिस के लिये उसने ठीक समय और उचित

स्थान पर उचित रकम देकर उचित कागजात पर हस्ताक्षर करवाये थे।

चुनावो के बाद दुभापिये ने अपने शहर के मकान मे जारासबाई की दावत की और एकान्त मे खुसुर-फुसुर करते हुए चेतावनी दी :

"बडी सरकार बहुत नाराज़ है... ढेरों शिकायते आई है कि तुम अपने पास चोरो को शरण दिये हुए हो और *उनमें घोड़ों के जाने-माने चोर भी शामिल हैं।"*

तोकपायेव ने सलाह दी कि जारासबाई आंख में खटकनेवालो मे से किसी एक को बड़ी सरकार को सौप दे...

"मुख्य बात तो यह है कि उसे खुद अपनी बाई की अदालत मे ही दण्ड देकर और फदे मे कसकर अपने ही लोगो के पहरे मे नगर लाया जाये। असली चीज़ तो इसका पूरा नाटक पेश करना है।"

यह सब कुछ बाल्तीगुल नही जानता था।

चेल्कार्स्क हल्के के काज़ियो की बैठक नज़दीक आती जा रही थी। जब झगडों और लड़ाइयों के बहुत-से कागज जमा हो जाते तो हल्केदार तीन-चार महीनों मे एकबार ऐसी बैठक बुला लेता था।

प्रायः यह होता था कि काज़ी मामलों पर विचार और बहस-मुबाहिसा करते, मगर हल्केदार उनकी पीठ पीछे यह कहता रहता :

"न तो मैंने फैसला किया है और न ही सज़ा दी है-बुजुर्गों और बुद्धिमानो ने ही ऐसा किया है..."

मगर अगली बैठक मे काज़ी ऋणो के सामान्य झगड़ो को तो छूनेवाले भी नही थे। वे तो किसी ख़ास महत्त्वपूर्ण मामले पर विचार करनेवाले थे, जिसके लिये विशेष समझ-बूझ की जरूरत थी। इसीलिये बहुत बेकरारी और खास दिलचस्पी से बैठक का इन्तजार किया जा रहा था। वे इन्तज़ार कर रहे थे और हल्केदार को जल्दी करने के लिये कह रहे थे। *वाख़्तीगुल को इस बात की भी जानकारी नही थी।*

मुसीबत के मारे की मुसीबते ऐसे ही बढती जाती है जैसे फटे-पुराने कुरते में पैवन्द। इसी समय जब वाख़्तीगुल को कोई रास्ता नही सूझ रहा था और वह पडोसियो से सलाह-मशविरा करता फिर रहा था, कोज़ीबाको के कई घोड़े ग़ायब हो गये। चोर और चोरी के माल का कही कोई निशान नही मिला। कोजीबाको ने झटपट वाख़्तीगुल को चोर ठहरा दिया। अगर कोई सुराग नही मिला तो इसका मतलब है कि घोडे उसी ने चुराये हैं। ऐसे ही तो यह मसल मशहूर नही है कि बद भला, बदनाम बुरा।

चुराये गये घोडो की खोज करने के लिये दो आदमी आये। वे वाख़्तीगुल के घर मे घुस गये और एक साल पहले की तरह ही सब जगह और हर कोने मे ताक-झाक करने लगे। वाख़्तीगुल को शुरू मे तो इस बात की हैरानी हुई कि ये शोहदे पराये हल्के मे अपने हल्के की तरह ही मनमानी कर रहे हैं। सच है कि उनसे और आशा ही क्या की जा सकती थी? कोज़ीबाक जो ठहरे! फिर भी वाख़्तीगुल ने उन्हे

शराफत से विदा करने की कोशिश की। मगर वे नहीं गये। मालिकों की तरह ही चीखते हुए बोले·

"क्या पिछले साल की सी दुर्गति कराना चाहते हो? फिर से हमारे कोड़ों का मजा चखना चाहते हो क्या?"

बाख्तीगुल आग-बबूला हो उठा। उसने अपने घुटनों तक के बूटों में से काली मूठवाली पतली और लम्बी-सी छुरी निकाली :

"चीर डालूगा तुम्हे... कमीने कुत्तो!"

बहुत गन्दी जबान वाले ये दोनों गुडे तो दिखावे के ही तीस मार खा निकले। छुरी देखते ही वे दोनों गालिया देते हुए अपने घोड़ों की ओर लपके। बहुत देर तक वे बहुत ही गंदी गालिया बकते हुए बाख्तीगुल के घर के सामने चक्कर काटते रहे। इन गीदड़ों को मालूम था कि बबर उनका पीछा नही करेगा।

उसी दिन हातशा ने मांस का एक बड़ा-सा टुकड़ा उबाल-कर बहुत बढ़िया पकवान तैयार किया और इसे लेकर हल्केदार के गाव मे जारासबाई के घर गई। मगर बाई की बीवी कदीशा ने तो सुरमा लगी अपनी भौंहें चढ़ा ली और मास की ओर देखा तक भी नहीं। हातशा उसे सम्मानपूर्वक मौसी-मौसी कहती रही, मगर वह जवाब में केवल अपने होंठो को टेढ़ा और घमंड से फूं-फां करती तथा खीसे निपोरती रही। मालकिन की देखादेखी जानवरो की देखभाल करनेवाली और घर की नौकरानियां भी हातशा का मजाक उड़ाने लगी, उसके हर शब्द के जवाब में ताने-बोलिया और खुले तौर पर फब्तिया कसने लगी।

हातशा ने ठीक मौका देखकर जारासबाई के सामने उसकी बीवी से अपने बेटे सेइत के बारे मे कहा·

"उस बुद्धू को मुल्ला के पास पढ़ना बहुत पसन्द आया है। चैन नही लेने देता। अपनी ही रट लगाये रहता है–'जाड़ा तो आया कि आया, कब से भेजोगे मुझे पढने के लिए? .. मै नहीं जानती कि उसे क्या जवाब दू।"

मगर हल्केदार और उसकी बीवी ने तो उसकी ओर देखा तक नही, मुह से एक फूटा शब्द भी नही निकाला मानो हातशा तो वहा थी ही नही। बहुत ही क्षुब्ध और डरी हुई वह अपने खस्ताहाल घर मे लौट आई।

तब बाप्तीगुल बाई के पास गया और जल्द ही गुम-सुम और उदास-उदास वापिस आ गया। हल्केदार के गाव मे लोग माथे पर बल डालकर उसकी ओर देखते, सीधे मुह बात तक न करते। उसकी ओर उगलिया उठाते और उसकी मुसीबतो का मजा लेते हुए पीठ पीछे जहरीले तीर छोड़ते–

"घमंडी कही का.." बाई के हाल के चहेते और सरदार ने, जो अब सभी से ठुकराया-बिसराया जा चुका था, इसी तरह अलग-थलग रहकर दस दिन और गुजार दिये। वह घर से बाहर नही निकला, किसी को उसने अपनी सूरत नही दिखाई और व्यर्थ ही यह अनुमान लगाता रहा कि क्या बात हो गई है और क्या होनेवाली है। वह तो मानो जेल मे बन्द था और केवल किसी अजनबी राहगीर की जबानी ही उसे यह पता लगा कि चेल्कार मे काजियो की बैठक शुरू हुए तीन दिन गुजर चुके है।

लोगों का कहना था कि बहुत ही क्रूर, बहुत ही गुस्सैल काजी वहा इकट्ठे हुए हैं। वे बडी सख्ती से जाच-पड़ताल करते हैं और बहुत ही कडी सजा देते हैं, न कोई दया, न रहम करते हैं। ऐसा भी सुनने मे आया मानो उन्होंने एक काली सूची तैयार की है, जिसमे लगभग बीस आदमी हैं जिन पर चोरी का इल्जाम लगाया गया है। कौन लोग हैं इस सूची मे, यह किसी को मालूम नही था। पर इतना बिल्कुल स्पष्ट था कि ये बदक़िस्मत जेल जाने से नही बच सकेंगे।

खुदा जाने कहा से, मगर हातशा ने उनमे से एक का नाम मालूम कर लिया। यह था—जादीगेर। यह सुनकर वास्तीगुल डर से बुरी तरह कांप उठा। पूरे साल मे उसने ऐसा डर एक बार भी महसूस नही किया था। जवान जादीगेर गर्मियों में धावों के वक़्त वास्तीगुल का दाया बाजू रहा था।

"ये बदमाश जानते हैं कि किसे निशाना बनाया जाये, किसे मुसीबत में फसाया जाये," वास्तीगुल ने अपने-आप से कहा: "मेरी बारी आनेवाली है।"

इन दिनों वह एक बार भी नही मुस्कराया, उसने मुंह में एक कौर भी नहीं डाला, आख तक नहीं झपकायी और किसी से एक बात तक नही की। फ़र की टोपी को आखों तक खीचकर वह फटी-पुरानी चटाई पर चित लेटा रहा, हिला-डुला भी नही मानो उसे जकड़ दिया गया हो। उसे प्रतीत होता मानो उसकी ज्योतिहीन आंखों के सामने दुनिया उल्टी होकर रह गई है।

वह लेटा हुआ अपने बुलावे का इन्तजार करता रहा।

और उसे बुलाया गया। हरकारे का सम्मानपूर्ण थैला लिये हुए एक आदमी आया और उसे अपने साथ लिवा ले गया।

बहुत बडे, ऊंचे और साफ़-सुथरे ख़ेमे में कोमल पंखों वाले गद्दों और रोयोंवाले तकियो पर मोटी तोंदोंवाले लेटे हुए थे। वे दिन-रात मास खाते रहते थे—खा खाकर उनके दिमागों पर भी चर्बी चढ गई थी। वे खाते थे और मुकदमों की कार्रवाई चलाते थे... वे उन गावो के कुत्तों के समान लगते थे, जहा महामारी से ढोर मर गये हैं। खूनी आंखे, गर्दन के उभरे बाल और टागों के बीच दुमें दबाये हुए पागल कुत्तों के समान जो मरे ढोरों को चट करने के बाद इन्सानों पर झपटते हैं।

बाड़तीगुल मुश्किल से ही ऐसे कदम रखता हुआ मानो लम्बी बीमारी भोग कर उठा हो, धीरे-धीरे अन्दर आया और सलाम करके दरवाजे के पास खडा हो गया। किसी ने भी उसकी ओर सहानुभूति से नहीं देखा, न तो कठोर अध्यक्ष ने और न ही स्नेहपूर्ण सारसेन ने। काजियों ने दूसरी ओर मुह फेर लिया मानो उसका सलाम लेते हुए डरते हों। टुकडखोरों ने, उल्टे, अपनी मछली जैसी अभिव्यक्तिहीन आखें उसके चेहरे पर गडाकर उसे घूर-घूर कर देखा और उनके चेहरों का तो इसलिए रंग उड़ गया कि वह उन्हें सलाम कर रहा था। वहा एक भी तो ऐसा आदमी नहीं था जो उसके स्वास्थ्य, परिवार और घर-बार का हालचाल पूछता।

"अब तो समझ रहा है न कि ऊंट किस करवट बैठने जा रहा है?" वाख्तीगुल ने जरा हंसकर अपने-आप से पूछा। अचानक उसने राहत की सांस ली। ऐसी राहत पाने की तो उसने ख़ुद भी उम्मीद न की थी।

उसे लगा मानो उसकी आत्मा में उजाला हो गया, दिमाग में हर चीज़ सुलझ गई है। यह तो जानी-पहचानी और पुरानी चाल है। बात इतनी ही है कि दुनिया में इन्साफ नहीं है और कभी नहीं होगा। बस, ऐसा ही है।

"मैं बिल्कुल बेकुसूर हूं, कोई अपराध नहीं किया मैंने," वाख्तीगुल ने अपने-आप से कहा। "अगर मैं चोर हूं तो तुम चोरों के भी बाप हो। तुम न तो मुझे अपराधी कह सकते हो, न मेरा निर्णय कर सकते हो। ख़ुदा मेरा गवाह है!"

इधर वाख्तीगुल ख़ुद अपने से बहस कर रहा था, अपनी सफाई पेश कर रहा था, उधर काजियों ने मुकदमे की कार्रवाई शुरू कर दी।

जाहिर है कि कोजोबाक मुद्दई थे और क़ाज़ी कोजोबायकों के मुखिया की बातें बहुत ध्यान से सुन रहे थे। उसकी बातें सुनने के बाद उन्होंने खास कर अच्छी तरह गला साफ़ किया, गम्भीर हुए और पूरे जोर-शोर से सभी एक साथ अभियोगी पर झपट पड़े।

पर उन्होंने चाहे कितना ही हंगामा किया, वाख्तीगुल ने हार नहीं मानी। पहले की भांति अब भी उसने [illegible] से इनकार नहीं किया। उसने एक दूसरे और फिर [illegible] वाई को बेधड़क जवाब दिये:

"मैंने न तो पहले कभी सचाई को छिपाया है और न अब ही छिपाऊंगा। कोज़ीबाको के जानवर मैंने चुराये हैं।"

"किसलिए चुराये? क्यो चुराये?"

"क्योंकि आपके दल मे था।"

चेल्कार के काज़ी कुछ देर के लिए चुप हो गये। उन्होंने नाक-भौह सिकोड़ी और चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखा। नाटे, मोटे और सूम्रों जैसी सीधी मूछोंवाले कोज़ीबाक काज़ी ने स्थिति को सम्भाला।

"ओह, यह तुम्हारा दल... किस्मत का मारा तुम्हारा यह दल!" खूब ज़ोर से ठहाका लगाया उसने। "किसकी इसने सेवा नहीं की, इस बेचारे दल ने? लगता है कि तुम्हे भी उसने गधे की तरह अपनी पीठ पेश कर दी, हाय, हाय!"

चेल्कारियो मे ज़रा हलचल हुई, उन्होंने दात निपोरे और अपने चिकने होठो पर ज़बान फेरी।

"यह जानना दिलचस्प होगा कि साट या ओराज कुल के दल के लोगों के साथ तुम्हारा क्या हिसाब-किताब है? हो सकता है कि तुमने किसी जन-सभा मे उनसे झगड़ा किया था, चेल्कारियो की सत्ता की रक्षा के लिए मोर्चा लिया था, जनता की जरूरतो के लिए सीना तानकर खड़े हो गये थे? लगता है कि मैं भूल गया हू कि यह कब हुआ था... हमे ज़रा याद करा दो, इतनी मेहरबानी करो!"

काज़ी ज़ोर से हस दिये और पेट पकड़कर उन्होंने तकियों के साथ टेक लगा ली।

"तुम ज़रा यह भी याद दिला दो कि किस हिसाब के बदले मे तुमने कोज़ीवाको के उक्त पांच घोडे लिये? हां, तो प्यारे, याद दिलाना तो उक्त पांच घोडों की! .."

वास्तीगुल ने हैरान होते हुए उदासी से इधर-उधर देखा। किस बात पर वे हस रहे हैं? शुरू मे तो उसने सचमुच यह याद करने की कोशिश की कि वे किन पांच घोड़ो की चर्चा कर रहे है। मगर कुछ देर बाद खुश होते हुए क़ाज़ियो की ओर देखकर उसने खुद भी खीसें निपोर दी। वे तो हमेशा खुश रहते हैं, वे तो सभी खुश रहते हैं – अपने भी, पराये भी, मुद्दई भी और निर्णायक भी।

"मैंने पाच ही नही, बहुत से और बहुत बार घोड़े चुराये है..." वास्तीगुल ने भारी आवाज़ मे कहा। "आप लोगों से यह थोडे ही छिपा रह सकता है कि मैंने कितने घोड़े लिये हैं। निश्चय ही यह सही है कि अपनी परवाह न करते हुए मैंने अपने हल्के के लिए सब कुछ किया – तुम लोगों के लिए लड़ा-भिड़ा, हर तरह की मुसीबतों का सामना किया। मालिक के लिए, उसकी भलाई के लिए अपने सिर तक की परवाह नही की..."

क़ाज़ियों में एकबारगी हलचल मच गई, वे उसकी बात मे बाधा डालते हुए शोर मचाने लगे।

"ए यह तुम क्या बकवास कर रहे हो, बात को कहां से कहां लिये जा रहे हो!"

"लड़ा. . भि... ड़ा!. ज़रा दिलेरी तो देखो इसकी... कहां से सीखे हो ऐसे शब्द?"

"लड़ना और चुराना, उसके लिए दोनों का एक ही अर्थ है।"

"खुद ही तो माना है इसने कि पांच नही, बहुत घोड़े चुराये हैं.. "

"मेरी समझ मे कुछ नही आ रहा," बाख़्तीगुल ने अपने गुस्से पर काबू पाते हुए धीरे से कहा। "सम्मानित लोगो, आप क्या चाहते है मुझ से?"

"तुम्हारे अपराधो के लिए तुम्हारे खिलाफ़ कार्रवाई कर रहे हैं," सबसे बुजुर्ग काज़ी ने बडे घमंड के साथ जवाब दिया। "हम तुम्हे अनाप-शनाप बकने से मना करते हैं! समझे!" अपने कहे शब्दो से खुश होते हुए उसने अपनी सफेद दाढी पर शान से हाथ फेरा। "छोटे मुह बड़ी बातें न करो, जो कुछ तुम्हारी शक्ति और तुम जैसे चरवाहे की अक्ल से दूर की बात है, उसे कहने की तुम्हे हिम्मत नही करनी चाहिए! जिन्हे ऐसी बातो का फ़ैसला करना चाहिए, जिन्हे खुदा ने इसके लिए भेजा है, वे अपने रोशन दिमागो का इस्तेमाल कर खुद ही अपने मामले सुलझा लेगे। तुम्हें इनसे कुछ लेना-देना नही। हमारे हल्क़े के दल ने बहुत पहले ही इन पाच घोडो और बाकी सभी चीजों का हिसाब चुकता कर दिया है। मैं कहता हू—बहुत पहले और पूरी तरह! और अपने हाथ साफ़ कर उसने क़ानूनी मुद्दई को सही और सचाई की राह दिखाई है। जब तुम्हें जवाब देने के लिए बुलाया गया है तो तुम अपने अपराधों के लिए जवाब दो!"

"मगर मेरा अपराध ही क्या है?" वाख़्तीगुल ने हताश होते हुए पूछा। "अपने लिए तो मैंने घोड़े चुराये नहीं और उन्हें चुराकर धनी भी नही हुआ। मैंने तो अपनी इच्छा के विरुद्ध केवल हुक्म की तामील की। शायद यही मेरा कुसूर है कि जो हुक्म मिला, मैंने वही किया? बताइये मुझे? .."

"यह भी ख़ू... ब रही! चोरी करने का भला तुम्हें कौन हुक्म दे सकता था?" बेशर्मी से आखे फाड़कर उसकी ओर देखते हुए एक कोजीवाक ने पूछा।

वाख़्तीगुल ने सिर झुका लिया। वह असमजस में था। इन लोगो की ओर देखते हुए, उनकी बाते सुनते और उनके जवाव देते हुए उसे शर्म आ रही थी।

"तो लग गया जबान मे ताला? दूसरों के मत्थे कलंक मढ़नेवाले..."

"अच्छा यही हो कि वे ख़ुद ही अपना दोष मान लें," वाख़्तीगुल ने दुखी होते हुए कहा। "उन्हे ढूंढने मे समय नही लगेगा। कही दूर भी नही जाना पड़ेगा... ये देखिये, वे सम्मानित स्थानो पर बैठे हैं," इतना कहकर उसने सारसेन और फिर कोकिश की ओर सकेत किया जो इसी समय अपने हाथों मे बेंत का शानदार कोड़ा लिये हुए खेमे में आया था। "बेशक यह छोटे मुह वड़ी बात होगी, फिर भी मैं यह देखना चाहूगा कि वे उन पाच घोड़ों और बाकी सभी चीजों की जिम्मेदारी से अपने को कैसे वचायेंगे... मैं देखना चाहता हूं उनके रोशन दिमाग..."

काजियों ने गुस्से से, अपनी खीझ को छिपाते हुए एक-दूसरे की ओर देखा। टुकड़खोर आपस में ईर्ष्या और द्वेष से खुसुर-फुसुर करने लगे। चरवाहा भूखा-नंगा है, मगर सत्ताधारियों से बहुत दिलेरी और समझदारी से उलझ रहा है। यह गुलाम न्याय की मांग करता है। छठी का दूध आ जायेगा!

सारसेन बहुत रोबीली सूरत बनाये चुप्पी साधे रहा। काला और सांड की तरह मोटा-ताज़ा कोकिश अपने कोड़े से खिलवाड़ करता और भुनभुनाता हुआ मुस्कराया।

"यह बात गांठ बांध लो," कोकिश ने कहा। "दल के झगड़े एक चीज है और चोरी दूसरी चीज! हम एक चीज के लिए जवाबदेह हैं और तुम दूसरी चीज़ के लिए। तुम इन दोनों को गड़बड़ाने की कोशिश नहीं करो... तुम्हारे किये कुछ नहीं होगा! ("यह कोकिश कह रहा है!" बाख्तीगुल ने सोचा)। "काजियो!" कोकिश ने जल्दी से कहा। "अगर आप लोग इसे मौका दे देंगे, तो वह न केवल हमारे बल्कि अन्य दसियों और ख़ुद जारासबाई के मुंह पर भी कीचड़ पोत देगा। हल्केदार ने मुझे आप से यही कहने के लिए भेजा है। उसने कहा है "चुनाव का इससे कोई सम्बन्ध नहीं, आपके सामने चोर है!.. वह चोर है और उसने यह मान भी लिया है! आप चोर के विरुद्ध कार्रवाई करें और सजा दें!"

बाख्तीगुल ने निराशा से अपने खुरदरे हाथ लटका दिये।

"मैं...चोर? यह हल्क़ेदार के शब्द...है?" उसने बालक सुलभ भोलेपन से पूछा। फिर भी उसे इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला।

उसकी ग्राखों के सामने चाहे कुछ भी क्यों न हो रहा था, फिर भी वह मन ही मन यह ग्राशा कर रहा था कि ग्राखिरी घड़ी मे हल्क़ेदार का एक शब्द, उसका केवल यह एक वाक्य – "मैं इस बदक़िस्मत की ज़िम्मेदारी लेता हूं" – उसे मुसीबत से बचा देगा। बस, सिर्फ इतना ही तो कहने की जरूरत थी हल्क़ेदार को। इस से ज्यादा कुछ नहीं। चाहे उसके साथ ग्रन्याय किया जाता, फिर भी ज़िन्दगी भर वह मालिक के ये शब्द न भूल पाता। कब्र में भी इन शब्दों को ग्रपने साथ लेकर जाता। "मैं बदकिस्मत की जिम्मेदारी लेता हू..."

बाख़्तीगुल की खुरदरी उगलियों ने ग्रनचाहे ही उसके गाल के उस निशान को छू लिया, जो ठप्पे की तरह उभरा हुग्रा था ग्रौर साल्मेन के साथ उसकी ग्राखिरी मुलाक़ात की यादगार था। ग्राज चरवाहे के दिल पर भी ऐसा ही गहरा घाव हो गया ग्रौर उसका दिल लहूलुहान होकर रह गया।

उसका एकाकी हृदय ग्रच्छी तरह जानता था कि संगदिली क्या होती है, छल-कपट किसे कहते हैं। बहुत ग्रच्छी तरह जानता था वह...

"ग्रगर हल्क़ेदार ने ही ये शब्द कहे हैं," बाख़्तीगुल ने कहा, "ग्रौर ग्रगर कोकिश झूठ नही बोलता, तो मैं मुर्दे की तरह जबान बन्द कर लेता हूं। ग्राप लोग मालिक हैं–मेरी

जिन्दगी का कुछ भी कर सकते हैं, वह कुत्ते से भी गयी-बीती है। कभी कोई गरीब आदमी था और अब नही रहा—इससे फर्क ही क्या पडता है। मगर आख़िर मे इतना जरूर कहना चाहता हूं कि मैंने तो आप लोगों पर विश्वास किया था. . पर खैर, ख़ुदा आपका भला करे और मैं इसी के लायक हू . ." अपनी बात पूरी किये बिना ही बाख़्तीगुल ने सिर झुका लिया, उठा और खेमे से बाहर आ गया।

वह मानो अधा-सा और अपने होंठ काटता हुआ जा रहा था कि कही कुत्ते की तरह हू-हू करके रो न पड़े। इसी क्षण उसे हल्केदार दिखाई पडा। जारासबाई के साथ बढ़िया लबादे पहने मोटी तोंदोवाले अन्य चार लोग थे। वे बडी शान के साथ बातचीत करते और धीमी चाल से चलते हुए उसके सामने से गुज़र गये। जारासबाई ने बाख़्तीगुल का सलाम भी न लिया। नजर उठाकर भी उसकी ओर न देखा! यह था हद दर्जे का कमीनापन... यह थी बेहयाई! ..

जारासबाई की पीठ को देखते हुए बाख़्तीगुल ने आज पहली बार दांत पीसे।

अर्दली भागा आया और उसने बाख़्तीगुल से खेमे मे चलकर अपनी सजा सुनने के लिए कहा। बाख़्तीगुल उसके पीछे-पीछे हो लिया।

काजियों ने इन्साफ के नाम पर चुराये गये पाच घोड़ो के बदले मे पाच घोड़े देने और चोरी के लिए तीन साल की जेल की सजा दी।

८

दो हृष्ट-पुष्ट जवान मुजरिम को बाहर लाये।

स्तेपी मे कोई जेलखाना नही था और लोगों को ताले मे बन्द रखने का चलन भी नही था। इसी लिए मुजरिम को शहर भेजने के पहले बेड़ियां पहना दी जाती थी, जिनके कड़ों मे बडा-सा ताला लगा दिया जाता था। इस तरह उसके भाग जाने का कोई डर नही रहता था।

शुरू मे तो बाख्तीगुल के होश-हवास गुम हो गये। वह यह तक न समझ पाया कि उसे कहा ले जाया जा रहा है। वह मानो ऊंघते हुए इन जवानों के बारे मे सोच रहा था— कितने कमजोर है ये, कैसे मरे-मरे से...

"यहा रुक जाओ," एक जवान ने कहा और दूसरा जाकर जगलगी बेड़िया ले आया। वह बाख्तीगुल के पैरो की ओर देखते हुए बेड़ियों को अपने हाथों मे इधर-उधर घुमाने लगा।

तब बाख्तीगुल ने उस जवान को उपेक्षा से ऐसा धक्का दिया कि वह मुश्किल से ही गिरते-गिरते बचा। बेड़ियां नीचे गिरकर मानो कराह उठी। दूसरा जवान बकरे की सी फुर्ती से उछलकर दूसरी ओर को हट गया।

बाख्तीगुल अपने घोडे के पास गया, उछलकर उस पर सवार हुआ और धीरे-धीरे उसे खेमों के बीच से दौड़ाता हुआ मन ही मन बोला: "लो, मेरा आखिरी सलाम..."

जवान निहत्थे थे। उन्हे इस बात के लिए दोष नहीं दिया जा सकता था कि उन्होंने तभी शोर मचाया जब विख्यात धावामार अपने घोड़े पर जा चढ़ा था।

"ए, ए! किधर जा रह हो! रोको! पकडो!"

स्तेपी में कजाख को पकड़ना तो हवा को पकड़ने के बराबर होता है। जवान जब तक चिल्लाते रहे, इसी बीच भगोडा उस पहाड़ी को पार कर गया जिस के पास गांव बसा हुआ था, खड़े किनारोंवाली घाटी में काफी दूर जा पहुंचा और पहाडियों के बीच गायब हो गया। पीछा करनेवालों को इस बात के लिए भी दोषी नही ठहराया जा सकता कि वे उसका कुछ पता न लगा सके। इन्सान कुत्ते तो होते नही... हल्केदार व्यर्थ ही आग-बबूला होता रहा, काजी बेकार ही गालिया बकते और उन जवानों को लापरवाही के लिए पुलिस को सौंप देने की धमकी देते रहे जिन्होंने मुजरिम को भाग जाने दिया था। बहुत कीमती शिकार निकल भागा था।

वह अपनी इच्छा के विरुद्ध उस जीवन की ओर चला गया था जिससे हमेशा बचता रहा था और जहा से लौटना सम्भव नहीं था।

वाल्तीगुल कही भी रुके बिना सरपट घोड़ा दौड़ाता हुआ घर पहुंचा। हातशा शब्दो के बिना ही समझ गई कि क्या मामला है। उसने न आसू बहाये, न रोयी-सिसकी और चुपचाप उसके गर्म कपड़े जुटाने लगी।

वाल्तीगुल ने झटपट दूसरे घोडे पर जीन कसा—तेज चाल-वाले मुश्की घोडे पर। इस घडी से यह घोडा ही उसका एकमात्र दोस्त रहेगा। उसने छर्रों से भरी हुई बहुत ही मामूली और पुरानी बन्दूक पीठ पर बाध ली और पेटी में

वह पिस्तौल भी खोल ली, जो वह गर्मी में भी अपने साथ रखता था। अब वह उसके लिए खिलौना नहीं थी।

बाइतीगुल नजदीक की काली चट्टानों के बीच चला गया। वहां उसने अपनी आखिरी भेड़ काटी और उसका मांस जैसे-तैसे अलग किया। आधा मांस उसने परिवार के लिए छोड़ दिया और आधे को खूब नमक लगाकर आंतों की ऊपरी झिल्ली मे डाल लिया। झुटपुटा होने पर हातशा उसके लिए पिसा हुआ बाजरा ले आई और बाइतीगुल ने उसे आधी भेड़ दे दी। अपने साथ उसने एक अन्य मोटा-ताजा कत्थई घोड़ा भी ले लिया।

विदा के क्षण तो इने-गिने ही रहे। अपने परिवार को खुदा के हवाले कर और पत्नी से यह कहे बिना ही कि वह कब लौटेगा, बाइतीगुल रात के अन्धेरे में खो गया।

हातशा तब भी नहीं रोई। खुश्क हुए होंठों से वह केवल इतना ही बुदबुदाई. "मुंह में राम राम और बगल में छुरी रखनेवाले मक्कार जारारबाई।.. खुदा करे कि तेरी बीवी भी तुझे यहां भेजे, जहां मैं अपने घरवाले को भेज रही हूं।.. खुदा करे कि तेरे बच्चों के साथ भी ऐसी ही बीते जैसी मेरों के साथ बीत रही है..." इतना कहकर उसने ताराहीन आकाश की ओर इस विश्वास के साथ देखा कि कमीने को उसका शाप लगेगा, कि उसे उसकी हाय [illegible]

इसी रात अगोड़े के घर में हल्कोदार के भेजे [illegible] आ घुसे, किन्तु वे हातशा से कुछ भी मालूम न [illegible]

"सुबह आप लोगो के पास गया था," उसने बनावटी मुस्कान लाते हुए कहा। "अब यह क्या किस्सा हो गया है?" मगर उसकी आखो मे गुस्सा और गर्व झाक रहा था।

दो हफ्ते बीत गये। जारासबाई ने ठीक तरह से खोज कराई, यों कहिये कि चिराग लेकर भगोड़े को खोजा जाता रहा।

दसियो घुडसवार दिन-रात घोड़े पर ही सवार घूमते रहे। उन्होने उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम की ओर सभी पहाड़ छान मारे। बुर्गेन और चेल्कार में सभी जानते थे कि बाग्तीगुल को ढूढ़ना आसान नही है, कि वह आसानी से हाथ नही आयेगा। इसलिए जारासबाई ने उसे भूखों मारकर पकड़ने का फैसला किया। हल्केदार के लोग बारी-बारी से और घोड़े बदल-बदल कर पहाडों और घाटियों, गांवो और जाडे के झोपड़ो में उसे खोजते रहते, सभी जगह घात लगाते और पहरेदार खड़े करते, ताकि भगोडे को चैन न मिले, उसका घोड़ा थक-हार जाये, खुद उसकी हिम्मत जवाब दे जाये और इस तरह उसे अशक्त और आतंकित कर पकड लिया जाये। पहाडो के एक-एक पत्थर, एक-एक दरार को जाननेवाले मशहूर शिकारी, जाने-माने चोर, जो हाथ को हाथ सुझाई न देनेवाले अन्धेरे मे भी रास्ता खोज लेते हैं और डरपोक भेडों के पास से भी दबे पांव निकल जाते हैं, उसकी तलाश कर रहे थे।

बाग्तीगुल उनसे ऐसे ही बच निकलता, जैसे अंधेरे में धुआ। मगर उसे बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता।

जेल एक गूंगे और अंधे तथा बडे मुहवाले राक्षस की तरह उसके सामने उभरती। उसे लगता मानो वह राक्षस एक भूत की तरह हर घड़ी उसका पीछा कर रहा है। बाक़्तीगुल उसकी ओर देखता हुआ प्रार्थना करने लगता.

"हे भगवान, मेरी रक्षा करो .. मुझे शक्ति दो!"

दुश्मन उसका डटकर और लगातार पीछा कर रहा था, ठीक वैसे ही जैसे एक लोक-कथा मे चुड़ैल बाबा-यागा एक कूबड़ और तेज चालवाले ऊंट पर सवार होकर दिलेर शिकारी कुलामेर्गेन का पीछा करती है। भगोड़े को कभी-कभी यह सपना आता कि दावानल उसके पीछे-पीछे एक दीवार की तरह बढ़ता आ रहा है या बाढ की बैंगनी-सी जीभ उसकी ओर लपक रही है। तब वह या तो पसीने से तर-ब-तर या फिर झुरझुरी महसूस करता हुआ जागता। कभी-कभी जागते हुए भी उसे ऐसी अनुभूति होती। ऐसे क्षण भी आते, जब वह स्वप्न और जागरण की स्थिति में अन्तर न कर पाता और भूत-प्रेत से अपनी रक्षा करने, उन्हे दूर भगाने के लिए क़मीज के अन्दर थूकता।

कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि घोड़ा उसे लगभग बेहोशी की हालत मे पीछा करनेवालों से बचा कर दूर ले जाता। इतना ही गनीमत कहिये कि बेहोशी मे भी वह घोड़े से नीचे न गिरता। होश आने पर वह किस्मत का शुक्रगुज़ार होता जिसने उसे ऐसा अच्छा घोड़ा, ऐसा बढ़िया दोस्त दिया। वह झल्लाकर बुदबुदाता:

"उनके हत्थे नही चढूंगा... जीते जी ऐसा नही होने दूगा... जीन पर ही मर जाऊगा... खुदा को अपनी जान दे दूगा, बाई को नही... खड्ड मे गिर कर मर जाना जेल मे सडने से बेहतर है..."

लेकिन घोर निराशा अधिकाधिक उसका गला दबोच लेती। वह फदे मे बुरी तरह कसे हुए घोड़े की तरह गले से खरखराहट की आवाज निकालता। देर-सवेर ये लालची, ये कमीने उसे पकड़ लेगे, उसे बेडियां पहना देंगे। वह मरना नही चाहता था। उसकी नसों, उसके थके-हारे शरीर मे गर्म खून तेजी से दौरा करता रहता। छोटे-से और बुझते हुए अलाव के सामने उकडूं बैठा हुआ वह चट्टानों की ओर ऐसे ही सिर उठाकर देखता, जैसे पाले की चांदनी रात में भेड़िया करता है और कहता:

"ए जारासबाई, हद से आगे नही बढ़ो..." उसके ये शब्द संवेदनशील प्रतिध्वनि के रूप मे चट्टानों मे गूज उठते।

जारासबाई को इस बात का शक हुआ कि गरीब गावों मे भगोड़े की मदद की जाती है, कि वहां के लोग उसे पनाह देते हैं, खिलाते-पिलाते है। उसने सभी जगह यह भयानक खबर पहुचाने के लिए अपने हरकारे भेज दिये:

"जब तक हमारे बीच भगोड़ा फिरता है, हममें से किसी को चैन नहीं मिलेगा। किसी भी क्षण नगर से पुलिसवालों का दस्ता आ जायेगा... समझ लो कि तब सभी की शामत आ जायेगी। कानून भंग करनेवाले एक व्यक्ति के कारण दसियों, सैकड़ों निर्दोषों को मुसीबत का सामना करना होगा...

तब बड़े-बूढ़े शिकवा-शिकायत करेंगे, बीवियां और बच्चे टसुए बहायेंगे, पर तब यह सब कुछ बेकार होगा!"

इसके साथ ही जारासवाई ने विश्वसनीय लोगो को प्रभावशाली बुजुर्गों के पास भेजा और यह कहलवाया कि वे हाथ पर हाथ धर कर न बैठे रहें। चालाक जारासवाई ने दिलेरो और डरपोको, दयालुओ और निष्ठुरों के दिल में दहशत पैदा कर दी। आकाश मे बाज और धरती पर शिकारी कुत्ते छोड़ दिये गये।

एकवारगी वाख़्तीगुल से छिपने की जगह और पेट भरने का गुप्त आसरा छिन गया। एक सप्ताह भी नही बीता कि उसने अपने को ऐसे घिरा हुआ पाया मानो ख़ूनी कुत्तों के घेरे मे भालू। पहाड़ो तक पर भी भरोसा नही किया जा सकता था। उसके कानो तक यह ख़बर पहुच गई कि मक्कार जारासवाई ने लोगो मे कैसे दहशत पैदा कर दी है। यह आज़माया हुआ तरीका था... अब किसी आदमी पर भरोसा नही किया जा सकता – एक दुत्कार कर भगा देगा तो दूसरा ख़ुद कन्नी काट कर भाग जायेगा, तीसरा विश्वासघात करेगा या फिर डर से हत्या कर डालेगा।

बेहद थके-हारे वाख़्तीगुल ने आख़िरी बार एक बरसाती रात लोगो के साथ बितायी। एक छोटे-से पहाड़ी गांव मे एक ख़स्ताहाल और अलग-थलग खेमे मे उसने पनाह ली। यह खेमा एक बढी हुई चट्टान के नीचे उस जगह पर था, जहां से फेन उगलती हुई तेज रफ़्तार वाली नदी ताल्गार बाहर निकलती थी।

इस खेमे मे पहुंचते ही उसे लगा कि वहां पहलेवाली बात नही हैं, कुछ गड़बड झाला है, उसके साथ पहले जैसा वर्ताव नही किया जा रहा। घर वालों ने उसे देखकर नाक-भौह सिकोडी, उससे ग्राख नही मिलाई, मानो उसके साथ साथ घर मे साप घुस ग्राया हो। रात को देर तक उसे घर वालों की दबी-घुटी ग्रौर चिन्ता भरी खुसुर-फुसुर सुनाई देती रही मानो वे उस खुसुर-फुसुर को भी उससे छिपाना चाहते हो। जब उनकी खुसुर-फुसुर ख़त्म हो गई तो भी उसकी ग्राख नही लगी। उसने घंटे भर के लिए झपकी ली, थकान मे दुखती हुई पीठ सीधी की ग्रौर पौ फटने से बहुत पहले ही दबे पावो बाहर ग्रा गया। घर वालों को उसकी ग्राहट तक न मिली। उसने खड़े-खड़े ही गहरी नीद सो रहे मुश्की घोड़े पर जीन कसा ग्रौर इस बात की ग्रच्छी तरह जाच-पड़ताल कर कि कोई उसे देख तो नही रहा, वहा से चल दिया। वह लज्जित ग्रौर दुखी होता हुग्रा, लेकिन मन में किसी तरह के रोप के बिना वहा से रवाना हुग्रा। यह भी ख़ुदा का शुक्र है कि उसके रास्ते मे किसी तरह के रोड़े नही ग्रटकाये जा रहे थे।

वुर्गेन में वाख़्तीगुल का एक दोस्त था, एक रूसी देहाती, जिसने जीवन के सभी उतार-चढाव देखे थे। वह बड़ा ही दिलेर ग्रादमी था। तीन साल पहले धावे के समय वे संयोग से इकट्ठे हो गये थे। वाख़्तीगुल उस समय साल्मेन के यहां काम करता था। उन दोनों के बीच गहरी दोस्ती हो गई। इस देहाती की दिलेरी की तो मिसाल ढूढना भी कठिन था।

उसने नगर के बड़े अफ़सरों से मोर्चा लिया। बेशक वह उनका अपना रूसी ही था, फिर भी अफसरो ने उसे जेल में डाल दिया। यह देहाती साल भर जेल मे पडा रहा। इसी समय बाख़्तीगुल से जितना बन पडा, उसने बहुत-से बच्चोंवाले उसके परिवार को अनाज और मास देकर मदद की। जेल में बुरी तरह सताया हुआ देहाती वापिस आया। पर वह जेल के जीवन की बाते ऐसे हंस हंसकर सुनाता कि बाख़्तीगुल के रोंगटे खडे हो जाते। काज़ियों के मुक़दमे और बीवी-बच्चों से विदा लेने के बाद बाख़्तीगुल सबसे पहले उसी के पास पहुचा। उसने किसी तरह की फालतू बातचीत किये बिना जरूरत के वक़्त के लिए ज़मीन मे दबाया हुआ बारूद और गोलियां निकाल कर उसे दी।

यह था असली दोस्त। पुलिसवालों से उसे डराना मुमकिन नही। मगर वह बहुत दूर, खुली स्तेपी मे और घनी आबादीवाली जगह पर रहता था।

बाख़्तीगुल के लिए सिर छिपाने की एक और जगह भी थी। यह जगह थी तास्तार के निचले भाग में, लाल चट्टानों के पास, ग़रीब काट्बाई के घर मे। दूसरों की तुलना में बाख़्तीगुल इस घर में कही अक्सर आता था और यहां उसे हमेशा पनाह मिलती थी। अपने घर से नाता टूटने के बाद काट्बाई का घर उसके लिए सबसे अधिक अपना और प्यारा हो गया था। बाख़्तीगुल ने उस घर में झांकने, अगर मिल जाये तो चाय पीकर तन गर्माने, मगर कोई बता दे इर्दगिर्द की अफवाहें सुनने और घोड़े को सूखे

मौज मनाने की सुविधा देने की जोखिम उठाने का निर्णय किया। उसने सोचा कि झुटपुटा हो जाने पर मैं पहाड़ों मे चला जाऊंगा।

बाख्तीगुल खड़ी ढाल पर छाये हुए चीड़ के जंगल के छोर पर पहुचा और उसने सावधानी से इधर-उधर नजर दौड़ाई। नीचे उद्धत-उद्दंड तालगार नदी अपने भयानक शोर से सारी घाटी को सिर पर उठाये हुए थी। काटुवाई के घर के आसपास और आंगन में कोई अजनबी नजर नही आ रहा था, जीन कसे हुए घोडे दिखाई नही दे रहे थे। बाख्तीगुल धीरे से फाटक पर पहुंचा, घोडे से उतरा, उसे बाधा और घर के अन्दर गया।

काटुवाई के परिवार मे कुल चार जने थे—वह खुद, उसकी बीवी और दो बच्चे। वह अपने वंश के लोगो और रिश्तेदारों से, जो साल भर जहा-तहा घूमते रहते थे, अलग और एक ही जगह टिककर रहता था। उनके साथ उसकी कभी-कभार और संयोगवश ही मुलाक़ात होती और तब भी वे एक-दूसरे मे ख़ास दिलचस्पी न लेते। काटुवाई गर्मी मे अनाज उगाता और जाडे में ढोरों की देखभाल करता। उसके पास एक घोड़ा और कुछ बकरे तथा मेमने थे। बस, इतने से ही वह अपना काम चलाता। शिकार करके भी कुछ ख़ुराक जुटा लेता। वह छोटे जानवरों के लिए बड़ी दक्षता से फदे और जाल लगाता और बड़े जानवरों को गोली से मारता। काटुवाई को शिकार का बेहद शौक हो गया था। बाख्तीगुल उसे कीमती कारतूसों का साझीदार बनाता और

वह खुद भी ऐसे जानवरों के शिकार का शौकीन था जिनके पद-चिह्न अन्य शिकारी खोज तक नहीं पाते थे। उसे दूर से एक ही गोली मारकर जानवर को बींध डालना अच्छा लगता था। इसी लिए इन दोनों के बीच गहरी छनने लगी थी।

वाख़्तीगुल ने इस समय पूरे परिवार को घर में पाया। काट्बाई बन्दूक़ साफ कर रहा था, उसकी बीवी हिरन का मांस भून रही थी और बच्चे मांस की दावत उड़ाने का इन्तज़ार करते हुए चूल्हे के क़रीब सटे हुए थे। अंगीठी पर मनपसन्द चाय उबल रही थी।

काट्बाई पचास से अधिक उम्र का था। उसकी छोटी-सी दाढ़ी में सफेदी आ गई थी, मगर गाल लाल-लाल थे, जवानों की तरह। वह नम्र और दयालु तथा प्यारा-सा व्यक्ति था। उसकी बीवी भी सुघड़ थी, गदरायी हुई, गोरे चेहरे और लाल लाल गालोंवाली। उसका चेहरा और शरीर के अग बड़े-बड़े थे और वह मर्दों से अधिक मिलती-जुलती थी, पर हद दर्जे की भोली-भाली, बालिका या दयालु बुढ़िया के समान थी। सच तो यह है कि उन दोनों के पूर्वजों की आत्माओं ने उन्हें सौभाग्यशाली बनाने के लिये ही मिलाया था! बच्चे भी बिल्कुल मां-बाप के ही रूप थे। दोनों लड़के विनम्र, साफ़-सुथरे, हसमुख और सन्तोषी थे।

फौरन चाय से उसका सत्कार किया गया। इसके बाद उसके लिए मास परोसा गया। ज़ाहिर है कि भगोड़े को रात बिताने के लिए भी कहा गया... वाख़्तीगुल के तन

में गर्मी आ गयी थी, उसका पेट भर गया था। उसने बिल्कुल वैसे ही अनुभव किया, जैसे कि अपने घर में, अपने परिवार में। बाख़्तीगुल का पीड़ित एकाकी हृदय द्रवित हो उठा, कसक उठा। वह अहाते में खड़े हुए अपने घोड़े के पास गया, जो रात की ख़ामोशी में चैन से सूखी घास चर रहा था। उसने घोड़े की गर्दन में बाहें डाल दीं और टीसते हृदय से अपनी सख़्त मूंछ को बेचैनी से चबाता हुआ देर तक ऐसे ही खड़ा रहा।

काटुबाई और उसकी बीवी बाख़्तीगुल के बारे में वही कुछ जानते थे जो कुछ उसने बताया था। इससे अधिक उन्हें कुछ मालूम नहीं था। काटुबाई लोगों के घर नहीं जाता था, ज़रूरत और काम-काज के बिना गांवों में इधर-उधर नहीं घूमता था, अफवाहों के फेर में नहीं पड़ता था और चुगलियों के बिना नहीं ऊबता था। ज़ाहिर है कि दीन-दुनिया से अनजान इस दयालु को पता भी नहीं था कि इस भगोड़े चोर की वह कितनी अधिक मदद करता है और उसे अपने घर में छिपाकर कितनी बड़ी जोखिम उठाता है। क्या इसी लिए तो काटुबाई इतना निश्चित नहीं था? अनजान को भला दोष ही क्या दिया जा सकता है?

बाख़्तीगुल ने काटुबाई के घर में पतझर की कई ठंडी रातें बिताईं। वह अंधेरा होने पर ही आता-जाता, ताकि अनचाहे भी मेहरबान लोगों के मत्थे न लग जाये। ताज़ादम होकर जाता और कभी ख़ाली हाथ न आता, किसी न किसी जंगली जानवर को मार लाता।

"हम तुम्हारी नही, बल्कि तुम हमारी मदद करते हो," रात को देर से खाना खाते हुए काटुबाई अक्सर कहता। "यह भी कह देना चाहता हूं कि अकेले का खुदा रखवाला होता है।"

और बाख्तीगुल ने सोचा कि अगर इस व्यक्ति को मजबूर होकर मुझे पुलिस के हवाले करना पड़े... तो बेशक ऐसा कर दे।

एक दिन सुबह को काटुबाई ने चिन्तित होते हुए कहा: "सुनने में आया है कि हमारे इलाके में मानो कोई खतरनाक, कोई बहुत बुरा आदमी फिरता है। आदमी नही—शैतान है... हल्क़ेदार ने सभी से यह कहा है कि जिस किसी के दिल में खुदा का डर है, वह इस दुष्ट को पकड़ कर उसके हवाले कर दे। हाल ही मे नीचेवाले गाव मे घुड़सवारो का पूरा टोला ही उसकी खोज करने आया था..." और काटुबाई ने जरा हंस कर अपनी बात ख़त्म करते हुए कहा: "बेटे, कही तुम ही तो नही हो वह शैतान?"

बाख्तीगुल समझ गया कि अब यहां से चलने का वक़्त आ गया।

उसने उसी समय घोड़े पर जीन कसा और ताल्गार नदी के किनारे-किनारे चल दिया।

दूरी पर सफ़ेद फेन उगलती हुई नदी की खरखरी और घुटी-घुटी आवाज सुनाई दे रही थी। निकट आने पर उसका बर्फ जैसा ठडा और झाग उगलता पानी दहशत पैदा करता था। इस नदी से झुरझुरी पैदा करनेवाली ठड की अनुभूति होती

और बहुत ही तेज धाराओं में गुंथा हुआ इसका हरा पानी बहुत ही जोर-शोर से बह रहा था। बरबस आदमी किनारे से हट जाता, पर फिर भी पानी पर उसकी नजर टिकी ही रहती! ऐसे प्रतीत होता मानो असंख्य अजगर लहरियें बनाते, अपनी मोटी-मोटी पीठों को ऊपर उठाते, एक-दूसरे को कसते और एक-दूसरे का गला घोंटते तथा बर्फ की तरह सफ़ेद झाग उगलते जा रहे हैं। ऐसे लगता मानो वे लहरें नहीं, हजारों जंगली जानवर हैं, जो कानों के पर्दे फाड़नेवाला शोर करते और बेहद डरे हुए नदी की धारा के साथ ताबड़-तोड़ भागते चले जा रहे हैं और उनकी पीठें एक-दूसरी के ऊपर चढ़ती-उतरती जा रही हैं।

वाख्तीगुल ने एक बड़े उभाड़ के ऊपर तंग और अंधेरी घाटी में अपने घोड़े को रोक लिया और नदी की ओर ध्यान से देखा मानो उन्मादी पानी के उन्माद का अनुमान लगाने की कोशिश की। गर्मी में तो तालगार में बहुत ही पानी होता है, मगर इस समय, पतझर के अन्त में भी वह छिछली नहीं थी और बेकार ही उछल-कूद करती हुई शोर मचा रही थी। इस जगह यह नदी खिची हुई कमान की तरह लग रही थी। ऊंचाई पर पानी की धाराएं अतिकाय चट्टानों के नीचे से बह रही थी, मानो ग्रानिट की नाक या पाषाणी राक्षस के गले से निकलकर आ रही हों और नीचे दूसरी चट्टान के पास आकर मानो अतल गर्त्त में पूरी तरह विलीन हो गई थी। ऐसे लगता था मानो एक पर्वत दूसरे पर्वत की प्यास बुझा रहा हो, किन्तु उसे तृप्त न कर पाता हो।

बाख्तीगुल मोड लाघकर अधिक ढालू स्थान पर, एक छोटी और खुली घाटी में पहुच गया। यहा नदी अधिक चौड़ी और कम गहरी हो गई थी, पर इस जगह इसे पार करने की बात सोचना भी वहुत भयानक था। चपटी, चिकनी और एक-दूसरी के पीछे भागती तथा ऊंचा और मोटा-मोटा और निश्चल फेन उगलती लहरों को देखकर सिर चकराने लगता था।

"पुल तो नीचेवाले गांव में है," बाख़्तीगुल ने सोचा। "ऐसे नदी पार नही की जा सकेगी..."

इसी समय उसके घोड़े ने सिर झटका और कान खड़े किये। बाख़्तीगुल ने उधर देखा जिधर घोड़े की नज़र थी और उसका दिल बैठ गया।

तट से लगभग आध मील की दूरी पर एक नगी चट्टान के पीछे से दो घुड़सवार सामने आये। वे साधारण लोग नहीं थे, अपने कुरते की केवल बायी आस्तीन ही पहने थे, हाथों मे सोटे लिये हुए थे। उनके घोड़े ख़ूब मोटे-ताज़े और ताजादम थे।

बाख़्तीगुल ने जल्दी से इधर-उधर नज़र दौड़ाई और उसे अपने पीछेवाली ढाल पर चार घुड़सवार और दिखाई दिये। उनमें से एक सम्भवतः बन्दूक लिये हुए था।

तो यह किस्सा है। लगता है कि मुझे घेरे में ले लिया गया है। मैं पहाड़ी फंदे में फंस गया हूं। सफ़ेद फेन वाली और शोर मचाती हुई तालगार नदी उसके रास्ते में बाधा

बनकर खड़ी थी, वह उसे वीरान और अगम्य स्थानों से अलग किये हुई थी।

छिपने की जगह कहीं नही थी। घेरा तोड़ा जाये? इसमे कामयाबी नही मिलेगी। ये लोग मेरा कोई लिहाज नही करेंगे। मुझे बच निकलता देखेंगे तो गोली ही मार देंगे।

सोच-विचार करने का भी समय नही था। घुड़सवारों की उस पर नज़र पड़ गई और वे भयानक रूप से मुह फाड़कर चिल्लाते, सोटे हिलाते और सरपट घोड़े दौड़ाते हुए उसकी ओर बढ चले। आगे-आगे तीन थे और उनके पीछे छः या सात और भी, जिन्हें गिनने का उसके पास वक्त नही था। सीटी की लम्बी-ऊंची आवाज मे तालगार का शोर दब गया।

अब तो केवल एक ही रास्ता था, एक ही उम्मीद बाकी रह गई थी...

बाख्तीगुल ने सोचे-विचारे बिना बन्दूक को पीठ पर कस लिया, छाती पर बधे कारतूसों के चिकने चमडे वाले थैले को छुआ और छः गोलियोंवाली पिस्तौल को जेब मे डाल लिया। उसने उड़ती-सी नज़र से तट पर ऐसी जगह चुन ली, जहा उसे पानी कुछ छिछला प्रतीत हुआ और घोड़े पर चाबुक सटकार कर उसे पानी की ओर बढ़ा दिया।

घोडा बढ़ चला। उसने सिर ऐसे झुका लिया मानो पानी पीने वाला हो और धीरे-धीरे तथा सावधानी से वर्फीले फेन मे आगे जाने लगा।

तट के करीब पानी घोड़े के घुटनों तक था। इसके आगे वह गहरा हो गया, पानी ने उसे पेट के बल ऊपर उठा

लिया, धकेला, एक वगल पेला और बहा ले चला। अब तट, पहाड़ और आकाश — सभी कुछ उलट-पलट गया और धमाके के साथ बाख़्तीगुल की आंखों के सामने मानो एक विराट काले-काले और हरे हिंडोले की भांति घूमने लगा।

"ओ ख़ुदा वचाओ... बुज़ुर्गों की रूहो मदद करो," घोड़े की पीठ पर लेटा हुआ बाख़्तीगुल प्रार्थना करने लगा।

ज़ोरदार और मज़बूत धारायें वाख़्तीगुल और घोडे को तेजी से अपने साथ बहाती हुई कभी उन्हे ऊपर को उठाती, कभी नीचे गिरातीं। पानी बाख़्तीगुल को सिर से पैर तक थपेड़े मार रहा था, धुन रहा था, कूट-पीट रहा था। लगता था मानो उस पर हज़ारों सोटे और मूसल वरस रहे हों जो उसे घोड़े से अलग करना चाहते हों। मगर वह अपना पूरा ज़ोर लगाकर घोड़े के साथ चिपका हुआ था और स्पष्टतः यह अनुभव कर रहा था कि उसके नीचे घोड़ा अपनी पूरी ताक़त से संघर्ष कर रहा है, कि जलगत पत्थरों से वह कितनी ज़ोरदार चोटें खा रहा है, उसके अग भंग हो रहे हैं, मगर वह जूझता जा रहा है, हिम्मत न हारकर घुड़सवार को वचा रहा है। जैसे ही घोड़े ने हिम्मत हारी कि खेल ख़त्म! घोड़े की टांगें और छाती तो सही-सलामत हैं न? दायां तट कहा और बायां कहां है? कुछ भी तो समझ में नहीं आता... बाख़्तीगुल के सामने पानी के लालची हरे मुंह खुले हुए थे और वह अन्धाधुंध उनकी ओर तेज़ी से वढ़ा जा रहा था और अच्छी तरह यह समझ रहा था कि वह मौत के मुंह में जा रहा है। अपनी आख़िरी पूरी कोशिश

करते हुए उसे अपने बचने की कोई उम्मीद नज़र नही आ रही थी।

घडी भर के लिए घोड़े को पेट के बल पानी से ऊपर उठाया गया और बाख़्तीगुल को अचानक अपने सामने भीगी हुई काली चट्टान दिखाई दी। "बस...अब सब कुछ ख़त्म!" उसके दिमाग मे यह विचार कौंधा। एक क्षण बाद वे इस चट्टान से टकरा जायेंगे, टुकडे-टुकड़े होकर अलग-अलग दिशाओं मे बिखर जायेंगे... मगर ऐसा कुछ नही हुआ। यह तो मानो करिश्मा ही हुआ कि घोड़ा काली चट्टान के क़रीब जाकर रुक गया और यहा तक कि पैरो पर खड़ा हो गया। बाख़्तीगुल ने इधर-उधर देखा, खासकर गला साफ किया और थूका। ख़ुदा का शुक्र है! तीन-चार क़दम की दूरी पर ही तट था...

पर इसी समय उसने अनुभव किया कि घोड़ा चिकनी चट्टान से नीचे फिसलने लगा है। पानी उसे बहाये लिये जा रहा है! घोड़े ने अपने पीले दात दिखाते हुए घरघरी-सी आवाज़ निकाली और अपनी जलती हुई नजर घुमाकर देखा। बस वह डूबा कि डूबा। बाख़्तीगुल कुछ भी न समझते हुए एक उन्मादी की तरह कुछ चीख उठा। शायद उसने कहा: "अलविदा" अथवा शायद "माफ करना"। फिर वह घोड़े की पीठ पर खड़ा हो गया, उसने कानों के बीच उसके सिर पर पैर रखा और अपनी पूरी ताक़त से, हताशा जनित शक्ति से तट की ओर छलांग लगाई।

पानी डंडे की तरह उसके पैर पर लगा और उसने सोचा : "बस, अब खेल ख़त्म!"

होश आने पर उसने अपने को तटवर्ती पत्थरों पर मुंह के बल लहूलुहान पड़े पाया। उसके कपड़े तार-तार हो गये थे और वह दर्द और ठंड से कांप रहा था। सबसे पहले उसे अपने घोड़े का ध्यान आया। बाख़्तीगुल ने कराहकर सिर ऊपर उठाया, मगर आंखों में छाई हुई लाल धुंध के कारण उसे कुछ भी दिखाई नही दिया।

दायां पहलू और जांघ ऐसे घायल थी मानो दरिन्दों ने अपने पंजों से उन्हें नोच डाला हो। सारे जिस्म पर खरोंचें थीं, नील पड़े हुए थे। मगर हड्डियां और सिर सही-सलामत थे। बन्दूक और कारतूसोंवाला थैला बच गया था, केवल छः गोलियोंवाली पिस्तौल जेब के साथ ही बह गई थी।

अंधा और दर्द से कराहता हुआ बाख़्तीगुल तट की ओर ऊपर रेंगा। जब ख़ूनी धुंध उसकी आखों के सामने से हटी तो उसने एक पागल की तरह ताल्गार को घूरा। अगर उसमें ताकत बची होती तो वह दर्द से हाय-वाय करने लगता। घोड़ा कहीं नज़र नहीं आया। चाबुक तो मानो बाख़्तीगुल का मज़ाक़ उड़ाता हुआ उसके हाथ के साथ लटक रहा था।

"हां, तो ज़ीन पर ही मरना नही लिखा था किस्मत में... घोड़ा नही रहा! वह पीले दांतों वाला निडर दोस्त अब वहां चला गया था, जहां से कोई लौटकर नहीं आता..."

बाख़्तीगुल ने नफरत से दांत पीसते हुए दूसरे किनारे की ओर देखा।

बेचैनी से उछलते-कूदते घोड़ों पर कोई डेढ़ दर्जन घुड़सवार इधर-उधर हिल-डुल रहे थे। वे धारा से काफ़ी दूर थे, पानी के निकट नहीं आ रहे थे। जो दृश्य उन्होंने देखा था, उससे सवार और घोड़े डर-सहम गये थे। शैतान ताल्गार को पार कर ही गया!

तब बाख्तीगुल ने अपना घायल घूसा ताना और उसे धीरे-से हिलाते हुए फटी-सी आवाज़ में कहा:

"ज़रा सब्र कर, मैं तुझे मज़ा चखाऊंगा, नेक और उदार बाई..."

६

बाख्तीगुल कराश-कराश घाटी के ऊपर कठोर और निर्जन प्रदेश में घूमता रहता। रात को वह चीड़ के जंगलों में छिप जाता, कांटेदार झाडियों के बीच पथरीले गढ़े में छोटी-छोटी लपटोंवाला धुएंदार अलाव जला लेता ताकि पतली-सी चाय अथवा कोई अन्य साधारण-सी चीज उबाल ले। सूर्योदय होते ही वह दर्रे के उस मटमैले मार्ग पर चला जाता जो बल खाता हुआ वीरान-सुनसान पहाड़ों में से गुजरता था।

बाख्तीगुल अपनी सूजी हुई आंखों को सिकोड़कर दिन भर इसी मार्ग पर नज़र जमाये रहता, अपनी काली मूछों को चबाता रहता। कभी-कभी वह नीचे इस मार्ग पर उतर आता, आगे-पीछे टहलता और इधर-उधर देखता रहता मानो कुछ खोज रहा हो। कभी-कभी उकड़ूं बैठ जाता, कभी एक

जगह और कभी दूसरी जगह पेट के बल लेट जाता, बहुत ही उदासी-भरे विचारों में उलझा-खोया-सा और अपने-आप से ही अस्पष्ट-सा कुछ बुदबुदाता रहता। वह पक्षी की भांति एक आंख मूदकर मानो आख मारते हुए इस मार्ग को टक-टकी बाधकर देखता जाता, देखता जाता।

बाख्तीगुल का चेहरा पीला पड गया था, गालों पर बिल्कुल लाली न रह गई थी। उसे लगता था मानो उसके शरीर में जिदगी के सभी रस सूख चुके हैं। उसके हाथ कापते और हिलते-डुलते रहते मानो वह अपनी उंगलियो से किसी अदृश्य चीज को दबाता और पीसता रहता। उसकी सास बेचैनी से चलती और वह अपनी सारी आत्मा को उंडेलता हुआ कभी गहरी सास लेता और कभी परेशान होता हुआ खरखरी आवाज में खांसता रहता।

बेक़रारी उसे परेशान करती रहती। उसके सूजे और मानो बुख़ार के कारण तपते होंठों पर झुकी हुई लम्बी मूंछें कभी-कभी उस बाज के पंखों जैसी प्रतीत होतीं, जो किसी लाल लोमड़ी को बर्फ में दबोच लेता है।

दिन बीतते गये और बाख्तीगुल हर दिन ऊंचाई से नीचे आकर घाटी में से होता हुआ इस मार्ग की ओर जाता। उसे जीभर कर देखने के बाद वह आकाश को छूती हुई पहाड़ी चरागाह की ओर देखता जिसका रंग पतझर में फीका पड़ चुका था और जहा समय से पहले गिरी हुई बर्फ के धब्बे नजर आते थे। इसके बाद वह ऊंचे असी पर्वत की ओर लाल-

लाल आखो से देखता। और वर्फ की चमक के कारण चकाचौंध होकर उन्हे सिकोड़ लेता। उस समय यह समझ मे न आता कि उसकी आखों में आंसू भरे हैं अथवा उनमें गुस्से की आग चमक रही है।

खुदा इस बात का गवाह है कि वह ऐसा नही चाहता था जो उसने करने की ठान ली थी, ठीक वैसे ही जैसे उसने पहले नेकनाम धावों में हिस्सा नही लेना चाहता था और न ही बदनामी वाली घुडचोरी में। इसी लिए उसने कुछ भी सोचे-समझे बिना मौत को गले लगाया और ताल्गार नदी मे कूद गया। उसकी किस्मत में तो मानो नया जन्म लेना लिखा था। ऐसा ही समझना चाहिए कि अभी उसने जिन्दगी के प्याले को पूरी तरह नही पिया था। वह जीवन की आखिरी बूंद यहा कराश-कराश में पीने की तैयारी कर रहा था!

कराश-कराश—यह वास्तव मे नगी चट्टानोंवाली तीन पर्वतमालाये थी। इनके गिर्द चीड़ और फर के जंगल थे। ये पर्वतमालायें थी—मुख्य कराश, मध्यम कराश और निम्न कराश... काले पर्वत, आबनूसी चट्टानें और शाश्वत रूप मे काले जंगल... यहां दर्रा बहुत ऊंचाई पर और दुर्गम्य था और इर्दगिर्द के इलाके में केवल एक ही। गर्मियों में यहा से धीरे-धीरे चलता हुआ एक के बाद एक कारवां बुर्गन और चेल्कार की ओर जाता। यहीं से होकर मिमियाती भेड़ों और हिनहिनाते घोडो के रेवड़ के रेवड़ आकर्षक पहाड़ी चरागाहों की ओर धारा प्रवाह बढ़ते जाते। अब बरखा-पानी

की पतझर में, बर्फ़ीले तूफ़ान और बर्फ़ के तूदो के समय कोई एकाध राहगीर ही दर्रे को जल्दी-जल्दी पार करता है अपने घोडे को टिटकारता और इधर-उधर भय से देखता है कि कही कोई भेडिया तो आसपास नही है जो ढोरों के साथ-साथ ही मैदानों मे उतर आते है।

केवल बाक़्तीगुल ही यहां से नहीं जाता था। वह जानता था कि यही उसे अपनी क़िस्मत को आजमाना होगा। वह पथ की ओर देखता हुआ उचित मौके की प्रतीक्षा करता रहता।

उसने अपने लिए मध्यम कराश पर्वतमाला चुनी। उसने इसे अच्छी तरह छान मारा, सभी ओर घूमा, हर दरार और हर मोड़ को देखा-भाला, कुत्ते की तरह पहाड़ों की गन्ध ली और उसके हर कोने को उसी तरह याद कर लिया जैसे मुल्ला अपनी धार्मिक पुस्तक को रट लेता है। वह ऐसी जगह की तलाश करता रहा जहा से ऐसे निकल आये मानो ज़मीन मे से निकला हो और फिर उसी क्षण ज़मीन में समा भी जाये। उसने ऐसी जगह खोज ली।

रास्ता पथरीली घाटी की ढाल पर से जा रहा था और राहगीर को बड़े चौड़े अर्ध-चक्र के गिर्द होकर जाना पड़ता था और बहुत दूरी से ही उसकी झलक मिल जाती थी। दर्रे के और क़रीब यह मार्ग दीवार की तरह खड़ी चट्टानों के साथ-साथ गहरी घाटी के किनारे-किनारे जाता था। यहां अगर कोई सामने से आ जाता तो केवल एक-दूसरे से सटकर ही लांघना सम्भव था। मार्ग के आमने-सामने गहरी घाटी के पार एक नुकीली चट्टान पर एक दूसरे से ऐसे सटे हुए मानो

एक ही जड़ से निकले हों, एस्प के तीन पुराने वृक्ष खड़े थे। एस्पो के बिल्कुल पीछे से सिर चकरा देनेवाली ढाल शुरू होती थी, जिस पर जहां-तहां उभरी हुई लाल चट्टानें बिखरी थी जिन पर बकरे ही खड़े रह सकते थे। इस ढाल के दामन मे घना-काला जंगल था जहां प्यादा और घुड़सवार भी आसानी से छिप सकता था।

वाम्तीगुल पौ फटने के साथ यहां आकर ऊचाई पर उगे एस्प के इन वृक्षो के धुधले रुपहले तनो को देर तक अपने खुरदरे और ठड से अकड़े हाथो से बड़े प्यार से सहलाता रहता।

वह जिस दुनिया मे रह रहा था उसे बहुत खिन्न मन से देखता था। पतझर के आकाश पर धुधली और मैली-सी चादर छाई रहती। दूरी पर स्थित हिम-मडित चोटियों को बादलो की पगडी ढके रहती। पर्वतो के पाषाणी चेहरे पर उदास-सी परछाइया पड़ती और दोपहर के समय भी पर्वतमालायें और उनकी चोटियां मानो नाक-भौह सिकोड़े रहती, अपनी झबरीली भौहो पर ऐसे बल डाले होती जैसे कि वे किसी कारणवश नाखुश हों। चारों ओर क्रब्र की सी खामोशी छाई रहती। नीले बादलों को चीर कर निकल आनेवाली उषा के प्रकाश मे एस्प वृक्षो के सामनेवाला मार्ग गहरा लाल-बैंगनी हो जाता, फूला-फूला और रक्त-रंजित सा लगता। इर्दगिर्द की चट्टानों पर लाल धब्बे चमकने लगते।

"अगर ऐसा ही होना बदा है, तो होने दो..." वाख़्तीगुल फुसफुसाया और उसने अपनी मूछें चबायी।

दिन जब साफ होता तो वह दर्रे के ऊपर चला जाता कि खुल कर सास ले सके, कि दिल पर पड़े हुए बोझ को हल्का कर पाये।

बड़ी दूरी पर धूप नहायी दक्षिणी दिशा में चीड़ वृक्षों का सारीमसाक्त जंगल दिखाई देता था। यहा से वह कत्थई रंग के एक अतिकाय घोडे के पुट्ठे के समान लगता था। जगली लहसुन की तरह तेज गधवाले इस जगल मे वाख़्तीगुल अपने भूतपूर्व मालिक के झुड से चुरायी हुई घोड़ी के साथ छिपा था और उस समय उसे इतनी भूख लगी थी कि राल की गन्ध से उसे मतली-सी होने लगी थी... यह केवल एक वर्ष पहले की बात थी! यह उसके जीवन का वह अन्तिम वर्ष था जो शुरू मे परेशानी की हद तक आरामदेह, असामान्य रूप से भरा-पूरा प्रतीत हुआ था।

दूसरी ओर दर्रे की ठण्डी हवाओ से रक्षा करनेवाली नाजार पर्वतमाला खड़ी थी। उसका नीला-सा चितकबरा कूबड़ पसीने से काले हुए खेत-मजदूर के हाथ की नसों की भाति उभरा हुआ था। इस पर्वतमाला पर भी एक-दूसरे के साथ सटे हुए युगो पुराने चीड के पीले-लाल और फर के काले-हरे वृक्ष सिर उठाये खडे थे। कही-कहीं उनके शिखर पहाड़ी चोटियो की ओर जा गिरे थे और पाषाण-वर्षा से छाल वंचित की गई उनकी शाखायें और उलझी-उलझायी विराटकाय जड़ोंवाले उनके तने प्राचीन सूरमा के समय बीतने के कारण

काले पड़े हुए पंजर जैसे लगते थे। यह पंजर तो जैसे पड़ा सडता रहता था और इसके नीचे कुछ भी नही उगता था।

पर्वतमाला और बादलों के ऊपर अछूती वर्फ से ढकी हुई ओजर की चोटी निरन्तर चमकती रहती थी। बूढा सफेद सिर, मगर नाम ओजर यानी दिलेर। रातों को भी वह आकाश को छूती हुई स्पष्ट रूप से रुपहली-रुपहली दिखाई देती रहती और कभी-कभी तो बाख़्तीगुल को ऐसे लगता मानो वह अपनी महती और अजेय आकृति से उसे अपनी भयानक चोटी की ओर बुलाती है जहां दया नाम की कोई चीज नही, जहा सब कठोर और निर्मम ही निर्मम है।

हा, बादलों के ऊपर दिखाई देनेवाला यह हिमानी शिखर बाख़्तीगुल से सचमुच बातें करता, मानो उसका साथ देता और यह समझता था कि इस एकाकी और सभी से दुत्कारे हुए व्यक्ति के मन में क्या है जो अपनी प्यारी मातृभूमि पर रहने से हताश हो चुका है।

दिन गर्म था और हवा ने अपने पख समेट लिये थे। बाख़्तीगुल दर्रे के ऊपर खडा हुआ श्वेत ओजर शिखर से मूक बातचीत कर रहा था कि अचानक किसी कारणवश उसने घूमकर देखा। वह सावधानी से चट्टान की ओट में हो गया और उसने चिन्ता से इधर-उधर नजर दौड़ाई... दूर मार्ग पर उसने मध्यम कराश की उदास दीवारों के नीचे एक घना और काला दल-सा देखा—वहां घुड़सवार थे।

वे असी पर्वत-की ओर से आ रहे थे और घाटी के घुप अंधेरे मे मानो डूबे-डूबे से, धीमे-धीमे बढ रहे थे।

बाख़्तीगुल धीरे से चीखा, झुका और सरसराती हुई ढाल को पार करते हुए तीन पुराने वृक्षों की ओर भाग चला। वह दबे-दबे, हाफता हुआ और ठण्डे पसीने से तर-ब-तर सलेटी तनों के पीछे जा कर लेट गया। उसी क्षण उसने ओज़र की ओर देखा। चकाचौंध करता हुआ सफ़ेद शिखर उसकी आखों में आंखे डालकर ऐसे देख रहा था मानो जशन मनाती हुई हज़ारो आंखें शरारत और उमंग से चमक रही हों।

बाख़्तीगुल ने अपने दिल पर हाथ रख लिया—वह तो मानो उछलकर बाहर आ जाना चाहता था। उसके कानों में घंटे-से बज रहे थे। उसने आखें सिकोड़कर नाज़ार जंगल की ओर देखा। उसे लगा मानो चुभती सुइयोंवाले फर वृक्ष अपनी जगह छोडकर दुर्ग पर धावा बोलनेवाली, आख़िरी हमला करनेवाली सेना के असंख्य दस्तों की भाति क़तार बाधकर कूबड़वाली पर्वतमाला पर लहरों की तरह ऊपर को भागे जा रहे हैं... मगर दूसरे ही क्षण उसे दूसरी अनुभूति हुई— उसे प्रतीत हुआ कि वहां, ऊंचाई पर सैनिक नही, फर और चीड़ के वृक्ष हैं और वे अपने शाखारूपी हाथों को लोगों की तरह फैलाये हुए उसके इरादे से डर कर सिर पर पैर रखकर भागे जा रहे हैं।

बाख़्तीगुल ने अपनी सूजी हुई आखों पर हाथ फेरा और छाती के बल ज़मीन पर लेट गया कि उसका दिल कुछ शान्त

हो जाये। उसने पसीने से तर और यातना से विकृत अपना चेहरा ज़मीन पर टिका दिया। ज़मीन चुप्पी साधे थी और उस पर दूर से आती हुई घोड़ों की टापों की भारी और गम्भीर आवाज़ फैल रही थी।

वाल्तीगुल ने एक बीमार की तरह अपना सिर बड़ी मुश्किल से ऊपर उठाया। एस्प वृक्षों के एकदम पास से ही नीचे की ओर वर्फ पिघलने के कारण भरे हुए नाले थे। वे झुर्रियों जैसे लगते थे और उन पर आंसुओं के निशानों के समान मटमैले फीते-से रिस रहे थे।

इस रास्ते पर तो हमारी मुठभेड़ होकर ही रहेगी! वाल्तीगुल ने इतने ज़ोर से दांत पीसे कि उन में दर्द होने लगा।

"जो होना है, सो हो," उसने धीरे से मानो मन्त्र पढ़ते हुए कहा और अपनी दायीं कोहनी के नीचे से बन्दूक की लम्बी नली सामने की ओर बढ़ाई।

नीली नीली जाली में मानो पारदर्शी रेशमी पर्दे के पीछे उस मार्ग की पतली-सी कमान पर घुड़सवार दिखाई दिये—कोई पन्द्रह व्यक्ति!

ये न तो चरवाहे थे और न ही हरकारे, बाइज़्ज़त लोग थे। इनके अधिकांश घोड़े तेज़ चालवाले थे, चुने हुए और ख़ूबसूरत हल्के रंगोंवाले। घोड़ों के साज़ और ज़ीन बढ़िया थे और दूर से हल्की-हल्की रुपहली झलक देते थे। धनी-मानी लोग इत्मीनान और निश्चिंत मन से चले आ रहे थे। मध्य में सब से अधिक मोटा-ताज़ा सवार था और आगे-पीछे

अपेक्षाकृत दुबले-पतले। वाख़्तीगुल को नारियों की भी झलक मिली जो ख़ूब सजी-धजी हुई थी, किसी बड़े पर्व के अनुरूप! काली चट्टानों की पृष्ठभूमि मे फूले फुदनोंवाली उनकी शॉलो के इन्द्रधनुषी रग आखो को चकाचौंध कर रहे थे और उनकी वर्फ जैसी सफेद रेशमी फ्रॉको के आंचल लहरा रहे थे। वे सभी लोग वहुत ख़ुश थे, निश्चिंत और उमंग-तरग भरे। घाटी के पार से ख़ुशी भरी आवाज़ें और ठहाके सुनाई दे रहे थे। जहा रास्ता कुछ चौडा था, वहा वे दो-तीन एक साथ हो जाते थे और जहा सकरा होता वहा एक के बाद एक घोड़ा चलता था। घुडसवार एक-दूसरे को पुकारते थे, मुड-मुड़कर देखते थे, वातचीत करते थे और जीनों पर पीछे की ओर हटते हुए जोरों के ठहाके लगाते थे। ये ख़ानदानी, अमीर और हसते-चहकते लोगों का दल था!

आखें सिकोडे और होंठ काटता हुआ वाख़्तीगुल इन घुड़सवारो के बीच एक की खोज कर रहा था। वह उसे देख और पहचान कर धीरे-से कुनमुनाया! वह रहा वह चिकना-चिकना, रोवदार और दरियादिल। वह रहा वह गोरे और घमंडी चेहरेवाला। वह सफ़ेद अयालों और सफेद पूछ तथा सफेद टखनोंवाले जाने-पहचाने सुनहरे-लाल घोड़े पर सवार था। घोडा तो जैसे मक्खन मला हुआ था, उसकी चर्वी चमकती थी और उसके वाल आग जैसी, बिल्कुल सुनहरी झलक देते थे। इसी घोड़े पर सवार होकर वाख़्तीगुल जवानों को धावे के लिए ले जाता था... ओह, कैसी तेज चालवाला है यह घोड़ा! ओह, कैसा वाका घुड़सवार है वह!

एकदम उसके पीछे हो जाती, वार-वार उसके बिलकुल पास आ जाती, मजाक करती, उसे हंसाती और ख़ुद भी शरारती ढंग से हस देती। जाहिर था कि वे बहुत ही रंग में थी।

अचानक झुरझुरी के अदृश्य बर्फ़ीले हाथों ने वाख़्तीगुल को जकड़ लिया। बन्दूक हिल गई, निशाना साधना सम्भव नहीं रहा।

तब वाख़्तीगुल ने फिर से ओज़र की ओर देखा... उसी क्षण उसके हाथों की कंपकपी गायब हो गई। सफेद सिर ने अपने ऊपर से वादलों की पगड़ी उतार दी और वह बड़ी शान से सिर से कंधों तक चमक उठा। वाख़्तीगुल को मानो अपने कर्त्तव्य-पालन का आदेश मिला। वहां ऊंचाई पर शायद इस समय पागलों की तरह सीत्कार करती हुई हवा मनमानी कर रही होगी, तालगार नदी की भांति जोरदार पद-प्रहार कर रही है। मानो इस हवा के सुर में सुर मिलाकर वाख़्तीगुल ने ज़ोर की हुंकार भरी और पुरानी तथा भारी बन्दूक़ को कस कर पकड़ लिया।

घुड़सवारों का हसता-चहकता दल चट्टान के ऊपर और काली-पथरीली दीवार की छाया में संकरी पगडंडी पर बढ़ा आ रहा था। दर्रे के निकट, चट्टान के बिलकुल किनारे पर नीचे की ओर झुकी हुई जंगली फलों की कुछ झाड़ियां उगी हुई थीं जिन में पके हुए, रसीले और कराश-कराश की चट्टानों की तरह काले-काले फल लगे हुए थे। झाड़ियों के करीब पहुंचने पर हर घुड़सवार ज़ीन से झुकता और काले-काले जंगली फलों को तोड़ लेता। केवल सुनहरे घोड़ेवाले

सवार ने ही हाथ नही बढ़ाया। लेकिन जब तक वह बड़ी शान से झाड़ियों के पास से गुजरा, तब तक बाख़्तीगुल ने अपनी बन्दूक कसकर थाम ली थी और उसकी ओर निशाना साध लिया था।

वह ख़ूबसूरत बाई के अपनी ओर मुंह करने की प्रतीक्षा कर रहा था।

पत्थरों पर बजते हुए घोड़ों के नाल ऊंची आवाज़ पैदा कर रहे थे। वे अधिकाधिक निकट आते जा रहे थे। और लीजिये, अब वे वहां आ गये जहा से रास्ता तीन एस्प वृक्षों की ओर मुड जाता था। बाख़्तीगुल की आंखों के सामने शानदार भूरे घोड़े की टागें झलकी और उसके पीछे-पीछे था सुनहरा घोड़ा। वह बड़े इत्मीनान से, अपना सुनहरा सिर ऊपर उठाये और नज़ाकत से सधे-सधाये क़दम रखता हुआ बढ़ता जा रहा था। बाख़्तीगुल को बाई के पीछे शॉल में लिपटी-लिपटाई एक जवान नारी की छोटी-सी आकृति दिखाई दी। स्पष्टत: यह तो दोसाई कुल की कालिश यानी जारासबाई की दूसरी बीबी थी जिसकी चुनावों की दौड़-धूप के समय ही बाई के साथ शादी तय हो चुकी थी। ख़ुशकिस्मत पति उसे अपने गांव ले जा रहा था।

"ठहरो! .. रुक जाओ..." बाख़्तीगुल ने अपने-आप से कहा। इस समय गोली चलाना ठीक नहीं होगा, वह दोनों के तन के पार हो जायेगी। मुझे घुड़सवार के आगे झुकने तक इन्तज़ार करना चाहिये।

बेहद ख़ुश और ख़ूबसूरत बाई घोडे के कान के ऊपर से

देखता हुआ अपनी ढग से सवारी हुई दाढ़ी पर हाथ फेर रहा था, उसी समय बाख्तीगुल ने धीरे से खटका दबा दिया। नीले ऊन और लोमड़ी की खालवाले फर कोट में वहा एक बड़ा-सा सूराख हो गया, जिस जगह का उसने निशाना साधा था और सूराख के ऊपर नीले-नीले धुए का पारदर्शी लहरिया-सा बल खाने लगा। घोड़ा पिछाडी के बल खड़ा हो गया और घुड़सवार चादी से सजे हुए जीन से नीचे लुढक गया। उसके फर के कोट के छोर हवा मे लहरा उठे।

जीन से नीचे गिरते बाई को देखता हुआ बाख्तीगुल अनचाहे ही उछलकर खड़ा हो गया। सन्नाटे में आये और डरे हुए घोड़ों को मुश्किल से वश मे कर पाते हुए बाई के साथियों ने भी उसे गिरते देखा।

इसके बाद बाख्तीगुल एस्प वृक्षों के पीछे सिर चकरा देनेवाली ढाल पर लाल चट्टानों के उभारों को बकरे की भाति फादता हुआ भाग चला। अपने पीछे उसने हवा को चीरती हुई कालिश की चीख सुनी:

"हाय, बाई! .. बाख्तीगुल।"

बाख्तीगुल सिहरा, झुका और पीछे की ओर मुड़कर देखे बिना जगल की ओर भाग गया।

शाम होते-होते बाख्तीगुल कराश-कराश से बहुत दूर चला गया था, मगर उसका दिल उसी भाति जोर से धक-धक कर रहा था जैसे कि तीन एस्पों के पास। बुखार की सी हरारत बनी रही। बेशक ठड नही थी, फिर भी उसे बार-बार जोरदार झुरझुरी महसूस होती थी।

झुटपुटा होने पर एक अपरिचित शिकारी से उसकी मुलाकात हुई। पहाड़ी बकरा जिसका उसने शिकार किया था, उसके घोडे पर लदा हुआ था। वाख़्तीगुल ने उसे आवाज़ देकर रोका, उसके शिकार को देखा और निर्दयी वक्र मुस्कान के साथ कहा :

"आज मैंने भी एक पहाड़ी बकरे का शिकार किया है..."

१०

वाख़्तीगुल जेल में था।

वह जीवित था, सांस लेता था, चलता-फिरता था, बातचीत करता था, मगर यह समझ पाना कठिन था कि वह कैसे जिन्दा बच गया, शरीर में अपनी आत्मा को कैसे बनाये रख पाया।

कराश-कराश के हत्याकाण्ड के बाद जारासबाई के सम्बन्धियों ने पूरे जानिस कुल में सरगर्मी ला दी। शहर के अधिकारियों ने उनकी मदद के लिए एक बड़ा पुलिस अफ़सर भेज दिया। वाख़्तीगुल का अपने जन्म-स्थान से दूर भागने को मन नहीं हुआ, वह तो दूसरे प्रदेश में भी नहीं गया। उसे गिरफ़्तार कर लिया गया।

छोटे-से सार कुल के ग़रीब लोग जिस जगह रहते थे, ताक़तवर जानिस कुल के लोगों ने वहां की ईंट से ईंट बजा दी, वहां केवल धूल ही धूल बाकी रह गई। जानिस ने सार कुल के लोगों की मामूली-सी जमा-पूजी भी ᐧᐧ

यहा तक कि फटी-पुरानी और गन्दी दरियां तक भी नही छोड़ी, पूरी तरह से कंगाल कर दिया और बच्चों तथा बूढ़ों समेत उन्हे बुर्गेन और चेल्कार से निकाल दिया। हातशा और उसके बच्चो को दर-दर की भीख मांगने के लायक बनाकर छोड़ दिया गया।

बाख्तीगुल अब नये, शहरी मुकदमे, रूसी काजियों के निर्णय का इन्तजार करने लगा।

हातशा नगर के एक अमीर काजी के घर में नौकरानी हो गई। जाहिर है कि वह बच्चों के साथ बहुत ही खस्ताहाल जिंदगी बिताती थी · उसे चारो में अपनी रोजी-रोटी बांटनी होती थी...

ठीक मौका देखकर बाख्तीगुल ने बड़े जेलर के पैर जा पकड़े। कुछ दिन बाद दरवाजा खुला और जेल की गुफा जैसी अधेरी कोठरी में सेइत आया!

लड़का जेल में ही रहने लगा।

मिलनसार, चिन्तनशील और मितभाषी सेइत सभी कैदियों— कज़ाखों और रूसियों—को पसन्द आया। उन में से बहुत-से उसे अपनी रोटी का कुछ हिस्सा खिला देते। बाख्तीगुल जब यह देखता तो उसका दिल टीस उठता।

जेल में बाख्तीगुल का साथवाला तख्ता अफानासी फ़ेदोतिच का था। अफानासी फेदोतिच ने कही से किताब हासिल की, अपने पैसों से पेंसिल और चौखाने कागज़ खरीदे और सेइत को मुल्ला जुनूस की भाति लिखना-पढ़ना सिखाने लगा। बाख्तीगुल यह सब श्रद्धा से देखता।

सेइत उखड़ी-उखड़ी नींद सोता, नींद में चीख कर ऊंची आवाज में बड़बड़ाता और आंसुओं से तर आंखें लिये जागता। वह रातों को चौंककर उठता, कुछ अस्पष्ट-सा चीखता और उनींदी तथा बहकी-बहकी नजरों से सींखचोंवाली खिड़की के बाहर चांदनी को देखता हुआ मानो यह समझने की कोशिश करता कि जेल में खिड़की कहां से आ गई... कभी कभी वह दिन के समय गुमसुम बैठा हुआ जेल की रोटी चबाता होता और उसके गालों पर जौ के दानों के समान आंसुओं की मोटी-मोटी और पीली-पीली बूंदें लुढ़कती दिखाई देतीं।

लड़के ने अपनी आंखों से यह देखा था कि कैसे उसके जाड़े के झोंपड़े के करीब जालिम कुत्ते के लोगों ने उसके बाप, पकड़ में न आनेवाले धाड़ामार को पकड़ा था!

सेइत मां की बांहों में बुरी तरह छटपटाता रहा था जो उसे पूरे जोर से पकड़े हुए गला फाड़ फाड़कर चिल्ला रही थी:

"ओ बदकिस्मत, देख तो ये तेरे बाप को मारे डाल रहे हैं, ओ बदकिस्मत!"

अब जेल की अपनी कोठरी में भी लड़के की आंखों के सामने वही तसवीर घूमती रहती—मोटे, कोड़े, घूंसे और बूटों की ठोकरें... वह इसे देखता और मां की बांहों में छटपटाता. .

बाल्टीगुल बेटे को न तो सहलाता और न ही चुप करने की कोशिश करता। हां, कभी-कभी जब वह बहुत ही जोर से चीखने लगता तो उसे जगा देता।

पर एक दिन जब बाकी सभी लोग सो रहे थे और सेइत जागकर सोने के तख्ते के आसपास घूम रहा था तो बाप ने उसे प्यार से अपने पास बुलाया :

"सेइतजान... बेटे, मेरे पास आओ तो..." उसने लड़के को अपने पास बिठाया और आसू से भीगे हुए उसके गाल को सहलाया और बोला : "मैं बहुत दिनों से सोच रहा हूं और बहुत कुछ सोचता रहा हूं। जो कुछ मैंने सोचा है, वही तुम से कहता हूं। मेरे लाड़ले, तुम मेरे सबसे बड़े बेटे हो, इसीलिये मैं तुम से यह अनुरोध करता हूं कि तुम अपने इस चौख़ाने कागज पर ही नज़र गड़ाये रहा करो। अगर कोई तुम्हें इन्सान बना सकता है तो सिर्फ यह कागज ही! देखते हो न कि मेरा क्या हाल हुआ है। सो भी इसीलिये कि मैं पढ़ा-लिखा नही हूं।"

"तुम निर्दोष हो," सेइत जोश से फुसफुसाया। "यह उन्ही ने... उन्ही ने... तुम्हे!.. मुझे सब कुछ मालूम है!"

"सब कुछ नही, मेरे लाल! पढ़-लिख जायेगा तो बाइयों और काज़ियों की उनकी हकीकत बता देगा। वे तेरा, मेरे जैसा हाल नही कर पायेंगे... तेरी आंखें खुल जायेंगी और तू दूसरों की आखें खोल देगा। यह मेरे बस की बात नहीं, मगर तू ऐसा कर सकता है, तुझे ऐसा करना चाहिये! इस चौख़ाने कागज़ में अपनी सारी शक्ति लगा दे... इस से अधिक तुझे कहने को मेरे पास कुछ भी नहीं है। न मेरे पास दिमाग़ है और न तालीम ही जो मैं तुझे दे सकूं।"

बाह्तीगुल के पीले गाल पर आंसू की एक बूंद ढलक आई। उसने उसे पोंछा और सेइत को दूर हटा दिया।

"अब जा, अपने कागज़ों में मन लगा।"

इस बातचीत के बाद सेइत ने नींद में रोना और चीख़ना-चिल्लाना बन्द कर दिया।

अफ़ानासी फ़्रेदोतिच बड़ा ख़ुशमिज़ाज आदमी था, कभी उदास नहीं होता था। वह सेइत का हाथ पकड़ कर उसे हर दिन सूखी घास से ढके जेल के अहाते में घुमाने के लिए ले जाता और वहां उसके साथ दौड़ने की होड़ करता।

उसी के साथ मिल कर सेइत अपने बाप और अन्य लोगों के लिए चाय का पानी उबालता। बाप को चाय पीना बहुत पसन्द था।

एक दिन रूसी ने अपनी नीली आंख झपकाते हुए लड़के से पूछा :

"किस सोच में डूबे हो प्यारे सेइत? बाहर वसन्त आ गया... शायद गांव की याद सता रही है? आज़ादी से घूमना-फिरना चाहते हो? अरे, चुप क्यों हो?"

लड़के ने उदासी से सिर हिला दिया।

"नहीं, अफ़ानासी चाचा... मन नहीं करता..."

"झूठ क्यों बोलते हो? ऐसा नहीं हो सकता।"

"यहां ज़्यादा अच्छा है, अफ़ानासी चाचा... यहां ज़्यादा अच्छा है..."

बाह्तीगुल दीवार की ओर मुंह किये हुए लेटा था, अपनी कुछ-कुछ पकी हुई मूंछों को काट रहा था, गले को हाथ से दबा रहा था।

"मेरे नन्हे, मेरे प्यारे... मेरी आंखों के तारे..." वह बेटे के बारे में सोच रहा था।

अफानासी फेदोतिच ने लडके को हाथों मे उठा लिया, उसे अपनी छाती से चिपका लिया। लड़के ने छूटने की कोशिश नही की।

"सुनते हो न भाइयो, क्या कह रहा है यह लडका? ओह सेइत, प्यारे सेइत! .. कसम ख़ुदा की, इन शब्दो से तुमने मेरी जान निकाल ली... जानते हो कि सब से भयानक बात क्या है? वह यह कि उसने किताबो से नही सीखे है ये शब्द!" अफानासी सेइत को छाती से लगाये हुए कोठरी में इधर-उधर घूमने लगा।

इसी तरह वे जेल में रहते गये, दिन बीतते गये और राते गुज़रती गई।

शान्त, मन लगाकर पढनेवाले और समझदार सावले बालक ने ढेरों ढेर कागज काले कर डाले। अफ़ानासी चाचा उसे लिखना, मुस्कराना और वह कुछ देखना सिखाता था जो उसका बाप नही देख पाया था—भावी जीवन का आलोक।

और वाल्तीगुल इन्तज़ार कर रहा था। वह इन्तज़ार कर रहा था मुकदमे का, निर्वासन का...

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिजाइन के बारे मे आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमे बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमे इस पते पर लिखिये:

प्रगति प्रकाशन,
२१, जूबोव्स्की बुल्वार,
मास्को, सोवियत संघ।

प्रगति प्रकाशन, मास्को की नयी हिंदी पुस्तकें

वसील बीकोव, प्यार और पत्थर

वसील बीकोव एक युवा बेलोरूसी लेखक हैं। उनका यह नया उपन्यास १९४१–१९४५ के जर्मन नात्सीवादविरोधी युद्ध की मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित है। इसके मुख्य पात्र – नौजवान सोवियत सैनिक इवान तेरेश्का और इतालवी तरुणी जूलिया नोवेल्ली – आस्ट्रियाई आल्प पर्वतश्रेणियों में एक नात्सी बंदी शिविर में कैद हैं। उनके प्रेम की यह नाटकीय गाथा ऐसे साहस से ओतप्रोत है, जिसे नात्सी शिविर की यातनाएं भी नहीं तोड़ पाईं।

आकार. १११ × १७ सें० मी० पृष्ठ संख्या : १९५

अर्कादी गैदार, चूक और गेक

'चूक और गेक' लेखक की सबसे प्रसिद्ध कृतियों में एक है। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि इसका फिल्मीकरण और ६० भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

चूक और गेक नाम के दो बालक मास्को से अपनी मां के साथ रेलगाड़ी में बैठकर सुदूर साइबेरिया में अपने भूविज्ञ पिता के पास जा रहे हैं। यात्रा में बालकों के आगे एक नया, विशाल और अद्भुत संसार उद्घाटित होता है। गैदार बड़े दयस्पर्शी और मनोरंजक ढंग से इस यात्रा का, बच्चों

की अपने पिता से भेंट का और उनकी शरारतों का वर्णन करते हैं।

पुस्तक मे प्रसिद्ध चित्रकार द० दुवीन्स्की के बनाये चित्र हैं। आकार: १७ × २२ सें० मी० कपड़े की पक्की जिल्द पृ० सं० :७१

हीरे-मोती, सोवियत संघ की लोककथाएं

कहावत है: "गीतों से किसी जाति के दिल का पता चलता है और लोककथाओं से उसकी आशाओं का"। इस पुस्तक मे सोवियत संघ में रहनेवाली जातियों की सर्वश्रेष्ठ कथाओं मे से कोई चालीस दी गई है — रूसी परी कथाएं, व्यंग्यपूर्ण उक्रइनी कहानिया, सोवियत पूर्व की जातियों की रंगीन कथाए और उत्तर की जातियों की मनोरम लोककथाएं।

पुस्तक मे व्लादीमिर मीनायेव के बनाये अनेक चित्र है, जिनमे से दस रंगीन है।

आकार: १७ × २२ सें० मी० पृ० सं० २५५